विचार
चिंतन
शोध सृजन

ISSN : 2455-4219

आलोचन दृष्टि

Aalochan Drishti

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal of Humanities

वर्ष : 7 अंक : 28 अप्रैल - जून, 2022

प्रधान-संपादक
डॉ० सुनील कुमार मानस

संपादक
डॉ० योगेश कुमार तिवारी

प्रबंध-संपादक
श्री सुधीर कुमार तिवारी

आलोचन दृष्टि वर्ष-7 अंक-28 अप्रैल - जून, 2022 ISSN : 2455-4219

ISSN : 2455-4219

आलोचन दृष्टि

Aalochan Drishti

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal of Humanities

वर्ष - 07	अंक - 28	अप्रैल-जून, 2022
Year - 07	**Volume - 28**	**April-June, 2022**

प्रधान-संपादक

डॉ० सुनील कुमार मानस

संपादक

डॉ० योगेश कुमार तिवारी

प्रबंध-संपादक

श्री सुधीर कुमार तिवारी

© **प्रकाशक :**

संपादकीय/प्रकाशकीय पता :–

सृजनश्री न्यास,

आजाद नगर, बिन्दकी, जनपद–फतेहपुर, उ0प्र0–212635

ई–मेल : aalochan.p@gmail.com

मुद्रण :– जय ग्राफिक्स एण्ड कान्सट्रक्सन, आई0टी0आई0 रोड़, फतेहपुर–212601।

	एक अंक	वार्षिक	आजीवन
सदस्यता शुल्क			
व्यक्तिगत	300	1200	10,000
संस्थागत	400	1500	15,000

संरक्षक एवं सलाहकार मंडल

- **प्रो0 गिरीश्वर मिश्र,** शिक्षाविद् एवं पूर्व कुलपति, म. गां. अं. हिं. वि., वर्धा, (महाराष्ट्र)।
- **प्रो0 चितरंजन मिश्र,** पूर्व प्रोफेसर, पं. दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय (उ0प्र0)।
- **प्रो0 नंदकिशोर आचार्य,** सुथारों की बड़ी गुवाड़, बीकानेर, राजस्थान–252028।
- **प्रो0 सदानंद गुप्त,** निदेशक, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, (उ0प्र0)।
- **प्रो0 कृपाशंकर चौबे,** महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, (महाराष्ट्र)।
- **प्रो0 माधवेन्द्र पाण्डेय,** हिन्दी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग, मेघालय।
- **प्रो0 प्रेमशंकर त्रिपाठी,** आशीर्वाद अपार्टमेन्ट, सी. ए. 5/10, देशबन्धु नगर, कलकत्ता।
- **प्रो0 दिलीप सिंह,** इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक (म.प्र.)।
- **प्रो0 आर0 एस0 सर्राजू,** हैदराबाद विश्वविद्यालय, (तेलंगाना)।
- **प्रो0 उमापति दीक्षित,** केन्द्रीय हिंदी संस्थान, आगरा (उ0प्र0)।
- **प्रो0 एस0 वी0 एस0 एस0 नारायण राजू,** तमिलनाडु केन्द्रीय विश्वविद्यालय, तमिलनाडु।
- **Shri. Tejendra Sharma,** Harrow & Weealdstone, Middlesex HA3 7AN (U.K.)
- **Mrs. Archana Painyuly,** Islevhusvej, 72 B, 2700, Bronshoj, Copenhagen, Denmark.

संपादक-मंडल

- **डॉ. उदयन मिश्र,** हरिश्चन्द्र पी. जी. कॉलेज, वाराणसी, (उ0प्र0)।
- **डॉ. बलराम शुक्ल,** संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।
- **डॉ. दण्डिभोट्ला नागेश्वर राव,** सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, श्री चंदशेखरेंद्र सरस्वती विश्वविद्यालय, एनात्तूर–कांचीपुरम्, तमिलनाडु।
- **डॉ. शशिभूषण भट्ट,** संस्कृत विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, (उ0प्र0)।
- **डॉ. अमित दूबे,** आर्य महिला पी. जी. वाराणसी।
- **श्री राम कुमार मानिक,** शिक्षा संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, (उ0प्र0)।

विधि-परामर्शदाता

श्री **उमाशंकर त्रिपाठी** (एडवोकेट), सिविल कोर्ट, फतेहपुर उ0प्र0–212601।

नोट : सभी पद अवैतनिक एवं अव्यावसायिक हैं। प्रकाशित शोध–लेखों एवं उसमें दिये गये उद्धरणों के वाद–विवाद संबंधी किसी भी कार्यवाही का शोधकर्ता (लेखक) स्वयं जिम्मेदार होगा। इस तरह के किसी भी विवाद में संपादक, प्रकाशक एवं 'आलोचन दृष्टि' परिवार के किसी भी सदस्य की कोई जवाबदारी नहीं होगी। किसी भी प्रकार के विवाद–संवाद का समाधान फतेहपुर न्यायालय में ही होगा।

संपादकीय

भाषा और संस्कृत का अन्योन्याश्रित संबंध है। यह दोनों एक दूसरे के सहयोग में ही फलती–फूलती हुई, अपनी यात्रा एवं अन्तर्यात्रा करती हैं। इनके फलने–फूलने की भाव–भूमि मानवीय–जीवन है, जो हमेशा इन्हीं की संचेतना से संचेचित होता चलता है अर्थात् मनुष्य के चिंतन की समस्त विचार–भूमि उसकी भाषा या उसकी संस्कृति की ही उपज होती है, इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि भाषा, संस्कृति एवं मानवीय–जीवन, निरंतर गतिशील रहते हैं। इसी निरंतरता में ही भाषा, संस्कृति एवं मानवीय–जीवन का आपसी संचरन परिलक्षित होता है या हम यह कह सकते हैं कि यही निरंतरता ही इनकी अनवरत यात्रा एवं अन्तर्यात्रा है।

जिस तरह भाषा एवं संस्कृति मानवीय–जीवन को ढ़ालती एवं संभालती है, उसी तरह मानवीय–जीवन भी भाषा और संस्कृति को समय के अनुरूप ढ़ालता–सवारता चलता है, और यह कभी पता नहीं चल पाता कि कब भाषा एवं संस्कृति, मानवीय–जीवन को ढ़ाल रही है या कब मानवीय–जीवन, भाषा एवं संस्कृति को ढ़ाल–सवार रहा है। यह बहुत ही सूक्ष्म प्रक्रिया है, स्थूल विचार से एकदम परे। आप दूर से समझने–जानने की कोशिश करेंगे, नहीं समझ में आएगा किंतु जब पास जाकर इसमें सामने लगेंगे, सब समझ में आने लगेगा, पर फिर दूर गए तो निश्चय ही दूर हो जाएंगे। इसकी समझ समरस होने में है, 'स्व' के विसर्जन में है। जो समरस नहीं हुआ जिसने 'स्व' का विसर्जन नहीं जाना, वह भाषा, संस्कृति एवं मानवीय–जीवन के विधि–विधान को भी नहीं जान–समझ सकता है।

इस अंक में दो महत्वपूर्ण शोध–लेख प्रकाशित हो रहे हैं। एक है– डॉ. राजेंद्र रंजन चतुर्वेदी का 'लोक विज्ञान' और दूसरा है– कमलाकांत त्रिपाठी का 'पाणिनी का अष्टाध्यायी और उनका भाषिक योगदान'। पहला, लोक–जीवन की व्यापकता को व्याख्यायित करता है तो दूसरा अष्टाध्यायी की भाषायी दृष्टि को। जहाँ एक और डॉ. चतुर्वेदी आचार्य वासुदेवशरण अग्रवाल के कथन– ''लोक हमारे जीवन का महासागर है, इसमें समस्त जनसमुदायों का अन्तर्भाव है। शतसहस्र मानवजातियाँ, जो आज धरती पर हैं, वे भी और जो आज नाम–शेष हैं, वे भी– लोक के महासागर में समायी हुई हैं, लोक केवल वर्तमान नहीं है, वह सुदूर अतीत से भविष्य तक की निरन्तरता है। लोक समुद्र की तरह है। अन्तर्धाराएं टकरा रहीं हैं। लहरें टकरा रही हैं। टकराने की प्रक्रिया के साथ ही एक और प्रक्रिया भी चल रही है, वे लहरें टकराती हैं, और टकरा कर उसी समुद्र की अथाह गहराई में समा जाती हैं? समुद्र की ऊपरी सतह पर लहरों का द्वन्द्व भी होता है, समायोजन भी होता है। एक लहर दूसरी लहर से टकराती है और एक लहर दूसरी लहर में समा जाती है। लोकजीवन और लोकमन में भी इसी प्रकार का द्वन्द्व–समायोजन चलता रहता है।''(पृ.–04) के आधार पर लोक–जीवन के बोधीय–ज्ञान से परिचित कराते हैं, वहीं दूसरी ओर त्रिपाठी जी समकालीन समय में संस्कृत भाषा की वैज्ञानिकता रेखांकित करते हुए संचेतित करते हैं– ''आज सम्पूर्ण विश्व पाणिनि के आधारभूत और उच्चस्तरीय भाषाशास्त्रीय काम के लिए उनका ऋणी है। उनका योगदान शुद्ध रूप से अकादमिक और सेक्यूलर है, जिसका किसी धर्म से कोई अनिवार्य सम्बंध नहीं।.... तो भारत सरकार को भी अपनी सांस्कृतिक कृपणता में पाणिनि के नाम पर पाँच रुपए का डाक–टिकट जारी करने से इतर कुछ और कैसे सूझेगा?''(पृ.–04) इस तरह दोनों रचनाकारों भारतीय चिंतन को विस्तार दिया है। इन दो शोध–लेखों के अतिरिक्त, हिंदी–भाषा के 6 शोध–लेख और अंग्रेजी–भाषा के 5 शोध–लेख प्रकाशित हो रहे हैं।

प्रस्तुत अंक को संपादित करने में शोध–लेखकों, सुधी–पाठकों एवं 'आलोचन–दृष्टि–परिवार' के प्रति के प्रति मैं कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए, आभार प्रगट करता हूँ।

शेष...।

30 जून, 2022।

विषयानुक्रमणिका

- संपादकीय

1. लोकविज्ञान : **Folkloristics** 1-9
   राजेन्द्ररंजन चतुर्वेदी
2. पाणिनि का 'अष्टाध्यायी' एवं उनका भाषिक योगदान 10-15
   कमलाकांत त्रिपाठी
3. नासिरा शर्मा तथा मेहरुन्निसा परवेज के उपन्यासों में अन्तर्विरोध 16-19
   शबीना यासमीन अंसारी एवं डॉ. अंजु दूबे
4. रतिनाथ की चाची : मूल समस्या 20-22
   डॉ. विनय कुमार
5. पोस्ट बाक्स नं. 203 नाला सोपारा में किन्नर जीवन का यथार्थ चित्रांकन 23-25
   डॉ. राकेश कुमार
6. राजस्थान की लोक संस्कृति एवं लोक कला 26-30
   जालमसिंह जे. राजपुरोहित
7. लैंगिक अनुकूलन की प्रक्रिया व्यक्तित्व निर्मिति और समाज 31-33
   डॉ. विभा नायक
8. दलित स्त्री केन्द्रित कहानियों में गरीबी 34-37
   डॉ. मिथिलेश कुमारी
9. **Trials of the soldiers of Indian National Army at The Red Fort (1945...** 38-43
   Dinesh mahajan
10. **Traditional Medicinal Plants used in Sports Injuries** 44-46
    Pushkar Singh Bisht
11. **Feminism in the Evolution of Patriarchy and the Nature of Patriarchy...** 47-51
    Dr. Rakesh Mohan Nautiyal & Dr. Deepti Bagwari
12. **A Study on The Changes in the Livelihood of Street Food Hawkers...** 52-61
    Satish Singh, Ashis Behera & Avnish Pandey
13. **A Case Study on the Factor Affecting the Work Stress Level Among...** 62-71
    Satish Singh, Isha Panchal & Rohit Thorat

लोकविज्ञान : Folkloristics

राजेन्द्ररंजन चतुर्वेदी*

मनुष्य का अध्ययन करने वाले अनुशासनों में लोकविज्ञान अधुनातन और विकासशील अनुशासन है। यह ठीक है कि किसी जमाने में यह मानवशास्त्र का अंग था। लगभग डेढ़ सौ बरस पहले उपनिवेशों के जमाने में लोकवार्ता–शास्त्री आदिम–मानस को लोकवार्ता का केन्द्रीय–तत्त्व मानते थे। वे मानते थे कि जंगली, आदिवासी, अर्धसभ्य, असभ्य, गंवार, अशिक्षित ही **फोक** हैं। इस धारणा के साथ ही वे अपने उपनिवेशों की प्रजा के जीवन का अध्ययन करते थे। बाद के मानवशास्त्रियों ने आदिवासी–क्षेत्रों के अध्ययन के निष्कर्षों के प्रकाश में जब अपने नागरिकों के जीवन का अध्ययन किया, तब आश्चर्य से पाया कि आदिम–मानस तो आधुनिक–तम मानस में भी अंधेरे में बैठा हुआ है। भारत में भी पहले ग्रामसाहित्य या आदिवासी–साहित्य को ही लोकसाहित्य समझा जाता था। इसमें भला क्या संदेह है कि ग्रामसाहित्य या आदिवासी–साहित्य लोकसाहित्य हैं, क्योंकि उनमें लोक की बड़ी सहज अभिव्यक्ति होती है । किन्तु ग्रामजन या आदिवासी ही लोक हो, ऐसी बात नहीं है। आज हम लोक के अन्तर्गत सर्वजन, समष्टिजन, सामान्यजन और जीवन की अविच्छिन्नता और निरन्तरता का अध्ययन करते हैं। सामूहिक मानस, समष्टि मानस, सामूहिक स्मृति, समष्टिचेतना, समष्टिहित।

वाचिक परम्परा :– लोकजीवन समष्टिजीवन है और लोक का अनुभव समष्टिजीवन का अनुभव है। यों तो व्यक्ति का अनुभव भी अनुभव ही है किन्तु जब व्यक्ति का अहंकार पिघल जाता है, जब व्यक्ति सर्वचेतना से अभिभूत हो जाता है। अथवा यों कहें कि व्यक्ति का 'मैं' पानी में नमक की तरह घुल जाता है और 'हम' में समा जाता है, कर्तृत्वचेतना का लोप हो जाता है, तब जब वह अनुभव तेरा–मेरा, इसका–उसका सब का अनुभव बन जाता है, तब उसे समष्टि–अनुभव कहते हैं। व्यक्ति समष्टि में ही तो समाया हुआ है, समष्टि से ओतप्रोत है, इसलिए यह समष्टि–प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है, लोकवार्ता शास्त्री इसे फ़ोकलोरिक–प्रोसिस कहते हैं। समष्टि–प्रक्रिया। जितना विस्तार मनुष्य के मन और मनुष्य के जीवन का है, लोक के अनुभव का विस्तार भी उतना ही व्यापक और विस्तृत है। इस अनुभव और अभिव्यक्ति के समस्त–विस्तार को लोकजीवन के अध्येता लोकवार्ता कहते हैं।

विश्वविद्यालयों में, विशेषकर उत्तरभारत के विश्वविद्यालयों की पीठों पर विराजमान महन्तों के मन में नये अनुशासनों के प्रति अनासक्ति का भाव है। इसका कारण है कि वे मानते हैं कि "वे स्वयं ही ज्ञान–विज्ञान की परमावधि हैं।" एक जमाना था, जब हमारे विश्वविद्यालयों के आचार्य भाषाविज्ञान को स्वतन्त्र अनुशासन मानने को तैयार ही नहीं होते थे। वे उसे हठ–पूर्वक साहित्य के एक अंग के रूप में ही मानते थे। प्रो.हरदेव बाहरी ने एक दिन मुझे वह सारी कहानी सुनायी थी कि किस प्रकार से बहुत संघर्ष करने के बाद भाषाविज्ञान को स्वतन्त्र अनुशासन का दर्जा मिल सका था। वही बात अब लोकविज्ञान को लेकर है।

Folklore (लोकवार्ता) के आधुनिक–अध्ययन का सूत्रपात तो अठारहवीं–उन्नीसवीं शताब्दी में पश्चिम में ही हुआ था और उसके प्रयोजन भी औपनिवेशिक ही थे, वे अपनी शासन–सुविधा के लिए उपनिवेशों में रहने–वाली मानव–जातियों की मानसिकता को समझना चाहते थे। वे उनके रीतिरिवाज, परंपरा को जानना चाहते थे। परन्तु अब लोकवार्ता की अवधारणा बदल गयी है। लोकसंस्कृति असभ्य और अर्द्ध–सभ्य, आदिवासी, ग्रामीण या निरक्षर लोगों की ही संस्कृति है या उन लोगों का ज्ञान–विज्ञान ही लोकवार्ता है, यह दकियानूसी बात अब पुरानी पड़ गयी है। आदिममानस की बात अब बीते युगों के एपीटोम तक जा पहुँची है, मनोवैज्ञानिकों और मानवशास्त्रियों का निष्कर्ष है कि मनुष्य के अवचेतन–मन में बीते युगों के युगयुगान्तर

*प्रख्यात चिंतक एवं लेखक, 1828, हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी, 13–17, पानीपत, हरियाणा– 132103।

स्मृति की धुँधली रेखाओं के रूप में मौजूद रहते हैं, इसलिए आधुनिक से आधुनिक कहे जाने वाले मानव के मन की किसी गुहा में युगयुगान्तर स्मृति के रूप में विद्यमान हैं। परिवेश बदलता है, आगे भी बदलेगा किन्तु बुनियादी–प्रवृत्तियाँ सब कुछ बदल कर भी खुद नहीं बदलती। मनुष्य की क्षमता असीम है, इस अर्थ में कि हम अपने देशकाल में उसका आकलन नहीं कर सकते, लेकिन उसकी सीमा है कि वह ऐनीमल है, जीव है। वैज्ञानिक–मानस विच्छिन्न नहीं हो सकता। अन्ततः मनुष्य बुनियादी–प्रवृत्तियों से ही संचालित होता है। यदि ऐसा न होता, तो संसार में युद्ध क्यों हो रहे होते ? परमाणु बम क्यों बनाये जाते और निरीह जनता पर बम–वर्षा क्यों हो रही होती ? रूस और यूक्रेन में युद्ध हो रहा है और हम देख रहे हैं, संयुक्त राष्ट्र संघ देख रहा है, मानवता देख रही है। अस्तु, यह प्रश्न यहाँ विचारणीय नहीं है, विचारणीय प्रश्न यहाँ मनुष्य को समझने का है, जीवन को समझने का है, जीवन की प्रक्रियाओं को समझने का है, समष्टि की प्रक्रिया को समझने का है, आदिम मानस को समझने का है। जातीय–स्मृति की भूमिका को समझने का है, उस ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्र में उतरने का है, जो लिखित अक्षर की परिधि से आज भी बाहर है, जो निरन्तर है। प्रश्न अभिजात और सामान्य के संबंध को जानने का है, प्रश्न व्यष्टि और समष्टि की प्रक्रिया को समझने का है। प्रश्न यह है कि क्या आधुनिक–मानस कोई साँचा–ढाँचा है या कि प्रवाह है ? जीवन की निरन्तरता और अविच्छिन्नता। जीवन और परिवेश की समग्रता को समझने के लिए लोकविज्ञान आज अनिवार्य अनुशासन बन चुका है। डॉ. हरद्वारी लाल शर्मा के शब्दों में कहें तो आज लोकविज्ञान ने लोकवार्ता Folklore का नाम–रूप ही नहीं, अपितु उसका वैज्ञानिक आयाम और अध्यात्म भी स्वीकार कर लिया है। इसी से लोकवार्ता से चल कर अब वह फ़ोकलोरिस्टिक्स Folkloristics लोकवार्ताविज्ञान या लोकविज्ञान तक पहुँच चुकी है। ऐसा अकस्मात् ही नहीं हुआ, वरन् इतिहास और विकास की अनिवार्यता ही इसका कारण है। ज्यों–ज्यों इतिहास का रूप निखरने लगा तो समाजविज्ञान, संस्कृति विज्ञान, मानवविज्ञान, मनोविज्ञान के उदय–विकास ने हमारे बोध की सीमाओं को विस्फारित किया, अनेक अँधेरे कोनों को आलोक से भर दिया और स्वयं मन, मानव, मानवता की पुनर्व्याख्या एवं मानव–संबंधों के पुनरालोचन के लिए मार्ग प्रशस्त हो गये। इस प्रकार इतिहास की इन घटनाओं के बीच आज के लोकविज्ञान का अवतार हुआ, मंगलमय अवतार। जर्मनी में प्रोफेसर रहे डॉ. इन्दु प्रकाश पांडेय ने लिखा है कि लोकविज्ञान या लोकविद्या का सम्यक् अध्ययन तभी हो सकता है, जब इसे विश्वविद्यालयों में स्वायत्त अनुशासन का दर्जा मिले। उन्होंने कहा कि अन्तःअनुशासनिक–सहयोग के बिना भी लोकविज्ञान का समुचित अध्ययन नहीं हो सकता।

डॉ. सत्येन्द्र ने लिखा है कि लोकवार्ता के वैज्ञानिक–अध्ययन के जितने भी प्रयास हुए, उनसे उसका वैज्ञानिक–पक्ष स्पष्ट हुआ है, रूपतत्त्व और संरचना के गहन–स्तरीय विज्ञान ने उसके सामाजिकविज्ञान होने में कोई सन्देह नहीं रहने दिया है। किन्तु भारत में जिस प्रकार भाषाविज्ञान–परिषद ने निरन्तर प्रयत्न करके भाषाविज्ञान को स्वतन्त्र–अनुशासन के रूप में मान्यता दिलायी है, वैसी किसी संस्था के अभाव में लोकवार्ताविज्ञान को मान्यता नहीं मिल सकी है।

यह विडंबना ही है कि जब विश्व के लोकवार्ताविद् लोकदृष्टि को पैना और व्यापक बनाने के लिये एक दूसरे के निकट आ रहे हैं हमारे यहां अभी तक लोकवार्ता की कोई केन्द्रीय अकादमी स्थापित नहीं हो सकी है, जहाँ भारत के सभी प्रदेशों और जनपदों के लोकजीवन और लोकसंस्कृति का समग्र और तुलनात्मक अध्ययन हो सके। साझा मंच के अभाव के कारण हिन्दी के एक जनपद का अध्येता दूसरे जनपद की लोकवार्ता से समन्वय नहीं कर पाता।

लोकजीवन का उद्वेलन इतिहास वदलता रहा है, किन्तु हमारे इतिहासकार अभी तक राजा–बादशाहों के ही किस्से सुनाते रहे हैं। आचार्य वासुदेवशरण अग्रवाल ने भारत में तीन बडी सांस्कृतिक–क्रांतियों का उल्लेख किया है, पहली क्रांति जब वैदिक–तत्व–बोध और लोकजीवन में व्याप्त निषाद–संस्कृति का समन्वय हुआ। वेदव्यास का महाभारत। स्वयं वेदव्यास वैदिक और निषाद संस्कृति का समन्वय हैं। आचार्य वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दों में भारत की दूसरी बडी सांस्कृतिक–क्रान्ति : विक्रम–संवत के आसपास भागवत–धर्म और महायान का समन्वय। शुंग–कुषाण–गुप्त काल के धार्मिक–आन्दोलन जिस लक्ष्य की ओर अग्रसर हैं, वह भागवतधर्म और महायान का समन्वय–प्रधान चिन्तन

था। जब विष्णु(विराट) युगसत्य के रूप में प्रकटे। विष्णु विराट अर्थात सभी विचारों को अपने में व्याप्त कर लेना और सब में व्याप्त हो जाना। जैन, बौद्ध, शैव, शाक्त, सभी ने इसमें भाग लिया। बुद्ध विष्णु के अवतार और ऋषभदेव विष्णु के चौबीस अवतारों में शामिल किये गये। जब युगसत्य के रूप में विष्णु का अभ्युदय हुआ था, तब विराट में सभी व्याप्त हो गये थे। तीसरी क्रान्ति : प्रेम की प्रतिष्ठा। अद्वैत–वेदान्त और भक्ति के समन्वय के रूप में हुई। भक्ति–आन्दोलन, जिसका प्रभाव संपूर्ण देश में हुआ, जिसने भारत के साहित्य–संस्कृति–दर्शन–कला–संगीत सभी को अपने में समेट लिया। तीनों क्रान्तियां लोकजीवन का उद्वेलन हैं।

लोकजीवन ही विचारधाराओं का स्रोत है, इसके अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। महात्मा बुद्ध हों या कबीर या महात्मा गांधी। महात्मा बुद्ध की जीवनगाथा में एक प्रसंग आता है– सुजाता की खीर का। जब महात्मा बुद्ध तप करते–करते क्षीणकाय हो गये थे, तब संयोग से ग्रामयुवतियों का एक समूह लोकगीत गाते हुए निकला, लोकगीत का भाव था कि– वीणा के तार को मत इतना ढीला छोडो कि वह स्पन्दित न हो और इतना मत कसो कि वह टूट ही जाय। महात्मा बुद्ध का ध्यान लोकगीत की भाव–सरणि पर केन्द्रित हुआ और उस एकाग्रता का प्रतिफलन मज्झिम–मग्ग या मध्यमार्ग के व्याख्यान के रूप में विश्वव्यापी बना। समस्त विचारधाराओं का स्रोत लोकजीवन ही है। नये युग के लिए नये अर्थों और मूल्यों की खोज लोकजीवन में ही हो सकती है। समस्त विचारधाराओं को जीवनी–शक्ति लोकजीवन लोकमानस से ही तो मिलती है। संसार में क्रान्तियाँ हुई हैं किन्तु क्रान्ति के वे विचार कहाँ से आये ? क्या किसी किताब में से अकस्मात् निकल पड़े ? अथवा वे विचार उस समय के लोकजीवन के मन्थन का परिणाम थे ? लोकजीवन की वह पीड़ा जो घनीभूत होकर व्यष्टि और समष्टिमन में क्रान्ति के विचार के रूप में परिणत हो गयी ? भारत के लोकजीवन की गहराई में जनगण की मैत्री और सामंजस्य की शक्तियां किस प्रकार सक्रिय हैं। जाति–पांति, मजहब, वर्ग और भाषाभेद, प्रान्त–भेद की विषमताओं–विविधताओं के गर्भ में मनुष्य की संवेदना कितनी प्राणवान है। पं. विद्यानिवास मिश्र ने मानुष–भाव को लोक के अमित वैभव को रूप में पहचाना था। मानुष–भाव, जो प्यार पर बल देता है, रिश्तों का विस्तार करता है। जो भीतर ही भीतर सब को जोड़ता है और जोड़ता ही रहता है– एक महाद्वीप को दूसरे महाद्वीप से, एक चेतना को दूसरी चेतना से, एक समुदाय को दूसरे समुदाय से, एक संस्कृति को दूसरी संस्कृति से। लोकसंस्कृति का यह मानुषभाव घेरता नहीं है, मनुष्य के असीम विस्तार का द्वार खोलता है।

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने रेखांकित किया है कि धरती के किसी भी अंचल के लोकगीत में मानव–हृदय का एक जैसा स्पन्दन सुनाई देता है। विश्व के लोकवार्ताशास्त्रियों ने लोककहानियों की अभिप्राय–अनुक्रणिका (मोटिफ़–इण्डेक्स) बनायी है। इसमें अचरज की कोई बात नहीं कि जेम्सफ्रेजर ने गोल्डनबाउ में पंचकिन की कहानी के एक मोटिफ़ की चर्चा की है कि उसके प्राण ताड़ वृक्षों के के बीच सुरक्षित पिंजड़े में बन्द तोते में थे। अब इस मोटिफ़ को उन्होंने बंगाल की कहानी में भी पाया और यूनान की कहानी में भी पाया। रोम, रूस, जर्मनी, नारवे, आयरिश, मिस्र, सुमात्रा, दक्षिण अफ्रीका, उत्तरी अमरीका, की लोककहानियों में भी उन्हें यह अभिप्राय मिल गया। मनोविज्ञान के अध्येता जुंग ने लोककहानियों का अध्ययन करके सामूहिक–अवचेतन के १२ आद्यबिंबों (आर्कटाइप) की खोज की थी। फ्रायड ने ग्रीकपुराण–गाथाओं के आधार पर ईडीपस मनोग्रन्थि की खोज की थी। मानवशास्त्रियों ने लोकगाथाओं के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि मनुष्य का मन बीते युगों का एपीटोम है। बीते युग उसके मन में समाये हुए हैं। लोकवार्ताशास्त्रियों ने लोककहानियों में रति (सेक्स), रक्षा, संग्रह, भूख, जिज्ञासा, आलस, प्रभुता, गौरव, होड़, सिसृक्षा नाम की दस मूल–प्रवृत्तियों को खोजा। ये मनुष्यजीवन की प्रेरक हैं। लोकवार्ताशास्त्रियों ने ही यह निष्कर्ष दिया कि लोकमानस की गति अलौकिक की ओर होती है और वह किसी महत्त्व की बात को चमत्कार गढ़ कर सुरक्षित रखता है।

लोकसरस्वती ने रामायण, महाभारत, भागवत एवं अन्य गाथाओं को भारत की धरती पर मानो लिख रखा है, हिमालय पार्वती का पिता है, .समुद्र लक्ष्मी का पिता है, धरती सीता की मां है, कहीं राम की अयोध्या है तो कहीं कृष्ण की द्वारका है, कहीं शिव का कैलाश है, कहीं बुद्ध हैं, कहीं महावीर तो कहीं गुरुनानक की

गाथा है। कहीं पांडव–गाथा है तो कहीं शक्तिगाथा है। कहीं दक्षप्रजापति है तो कहीं काली कलकत्तेवाली है, कहीं मुंबादेवी है तो कहीं राजाबलि हैं। इन सब गाथाओं को हम निम्नलिखित रूप में वर्गीकृत कर सकते हैं झझ विष्णुगाथा (राम–कृष्ण–गाथा) शिवगाथा, शक्तिगाथा, इन्द्रगाथा, महाभारतगाथा–चक्र, आल्हाचक्र, गोरखचक्र, सूफी गाथा, जातककथा एवं अन्य पुराण–गाथाओं का तादात्म्य–संबंध है। भारत की राष्ट्रीयता से इन गाथाओं का अविच्छिन्न संबंध है।

मनुष्य की उस सत्ता का नाम लोक है, जहाँ जाति–पाँति, ऊँच–नीच, गरीब–अमीर, शासक–शासित, स्त्री–पुरुष, धर्म–संप्रदाय तथा क्षेत्रीयता के सभी बंधन खुल जांय। मालिक–नौकर, बडा–छोटा, वकील–व्यापारी, प्रोफेसर, उद्योगपति, नेता आदि बाह्य उपाधियां या छिलका हैं, इनके भीतर जो सामान्य मनुष्य है,वह लोक है।

लोक में सब हैं, लोक सबका आश्रय है। विभिन्न जाति–बिरादरी, वर्ग, धर्म–संप्रदाय लोक में ही जन्म लेते हैं, लोक से ही जीवनी–शक्ति प्राप्त करते हैं और लोक में ही समा जाते हैं। सब के बीच जो भेद हैं, वे तात्विक नहीं हैं, दृश्यमान (अहंकार–निर्मित) हैं। भीतर से वे सब मनुष्य ही हैं। सर्वजन–चेतना ही लोकचेतना है।

बड़ा, छोटा, मालिक, नौकर, अधिकारी, राजनेता, व्यापारी, प्राध्यापक, श्रमजीवी, बुद्धिजीवी, विद्वान, बेपढ़ा, शासक और शासित आदि बाह्य उपाधियाँ ही हैं। जिस प्रकार हम घर से अपनी प्रतिष्ठा के अनुकूल परिधान धारण करके बारह जाते हैं और जब लौटकर आते हैं तो फिर उस परिधान को खूँटी पर टाँग देते हैं और वह विशिष्टता छोड़कर घर में सामान्य बन जाते हैं, बच्चों में अपने उस बाहरी बड़प्पन को भूल जाते हैं, उसी प्रकार इन उपाधियों के भीतर प्रत्येक व्यक्ति लोक ही है। आचार्य वासुदेवशरण अग्रवाल ने कहा था कि– लोक हमारे जीवन का महासागर है, इसमें समस्त जनसमुदायों का अन्तर्भाव है। शतसहस्र मानवजातियाँ, जो आज धरती पर हैं, वे भी और जो आज नाम–शेष हैं, वे भी– लोक के महासागर में समायी हुई हैं, लोक केवल वर्तमान नहीं है, वह सुदूर अतीत से भविष्य तक की निरन्तरता है। लोक समुद्र की तरह है। अन्तर्धाराएं टकरा रहीं हैं। लहरें टकरा रही हैं। टकराने की प्रक्रिया के साथ ही एक और प्रक्रिया भी चल रही है, वे लहरें टकराती हैं, और टकरा कर उसी समुद्र की अथाह गहराई में समा जाती हैं? समुद्र की ऊपरी सतह पर लहरों का द्वन्द्व भी होता है, समायोजन भी होता है। एक लहर दूसरी लहर से टकराती है और एक लहर दूसरी लहर में समा जाती है। लोकजीवन और लोकमन में भी इसी प्रकार का द्वन्द्व–समायोजन चलता रहता है। हवा, और चंद्रमा के संस्पर्श से हलचल होती है, समुद्र के उद्वेलन की प्रक्रिया में ज्वार–भाटे भी उठते हैं समुद्र के भीतर भूकंप भी आते हैं, भूस्खलन भी होते हैं, जिनकी वजह से सुनामी' जैसी लहरें और तूफान भी आते हैं, जो विनाशकारी रूप धारण कर लेते हैं। युगों युगों में इसी प्रकार से युद्ध और क्रान्तियाँ हुई हैं। समुद्र की एक सतह पर एक प्रकार के जलचर रहते हैं और दूसरी अन्य सतहों पर दूसरी प्रकार के जलजन्तु होते हैं। समुद्र में जीव–जंतुओं की दो लाख से अधिक प्रजातियां विचरण करती हैं। लाखों तरह की वनस्पतियां पाई जाती हैं। समुद्र में हजारों तरह की सुरंगें हैं। समुद्र में बरमूडा त्रिभुज जैसी जगह भी है, जहाँ वायुयान और जलयान रहस्यमय तरीके से अदृश्य हो जाते हैं। समुद्र में हजारों छोटे और बड़े पर्वत हैं। समुद्र की भिन्न भिन्न सतहों और क्षेत्रों की आवाज भिन्न भिन्न है। कहीं समुद्र की चिंघाड़ती सी आवाज है, तो कहीं पर किसी वाद्ययंत्र के बजने जैसी। समुद्र की भिन्न भिन्न सतहों पर सीपी–शंख से लेकर नाना प्रकार के रत्न मिलते हैं, जिनके कारण समुद्र का नाम रत्नाकर है। ठीक इसी प्रकार से लोकमानस रूपी समुद्र की विभिन्न सतहें हैं। विभिन्न आवाजें हैं। हजारों साल पहले देश की लोकमेधा ने इस लोक को विराट पुरुष के रूप में प्रणाम किया था। विराट पुरुष जो सहस्रशीर्ष है, सहस्रपाद है, सहस्रनेत्र है, और सहस्रबाहु है। उसमें कोटि युगों का अंतर्भाव है। विभिन्न जाति, वर्ण, वर्ग, धर्म उसके हाथ–पैर, नाक–कान, आंख, पेट आदि हैं। वे सभी अंग अविच्छिन्न हैं और एक दूसरे के लिये हैं। वे अलग अलग नहीं हैं, वे सब के लिये सब हैं इस सब के बीच जो नाम रूप का भेद, सीमा, असमानता है, वह तात्विक नहीं है। लोकतन्त्र के प्रभात में लोकसत्ता का मंगलाचरण करते हुए ७सितंबर १९४७ को मथुरा में ब्रजसाहित्यमंडल के तत्वावधान में आयोजित लोकसंस्कृति–प्रशिक्षण–शिविर में आचार्य वासुदेव शरण अग्रवाल

ने कहा था– जनता ही हमारे उदीयमान राष्ट्र की महती देवता है। हमारे सब आयोजनों के मूल में और सभी विचारों के केन्द्र में जनता ही प्रतिष्ठित है। यह सत्य जनपदीय–दृष्टिकोण का मेरुदंड है। जनता के जीवन के साथ हमारी सहानुभूति और आत्मा जितनी दृढ़ होगी, उतना ही अधिक हम जनपदों को जान सकेंगे। खुली हुई किताब के समान जनपदों का जीवन हमारे चारों ओर फैला हुआ है। पास गांव और दूर देहात में बसने–वाला जन इन रहस्यमयी पुस्तकों का एक–एक पृष्ठ है। यदि हम अपने आप को उस लिपि से परिचित कर लें, जिस लिपि में जनपदों और गांवों की अकथ–कहानी धरती और आकाश के बीच में लिखी हुई है, तो हम सहज ही जनपदीय–जीवन की महिमामय कथा को पढ़ सकते हैं। भारत की आत्मा का साक्षात्कार करने का एकमात्र यही रास्ता है।

ज्ञान के समस्त वैभव का विकास दो धाराओं या परंपराओं में हुआ लोके वेदे च। शास्त्र परंपरा और लोकपरंपरा। लिखित अक्षर की परंपरा शास्त्र–परंपरा और वाचिक–परंपरा लोक–परंपरा है। ध्यान देने की बात है कि शास्त्र–परंपरा ने लोकपरंपरा को वरीयता दी। महर्षि पतंजलि ने सूत्र दिया था– लोकतः प्रमाणम्। लोकविज्ञानाच्च सिद्धम्। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में– लोकज्ञता सर्वज्ञता। शास्त्रज्ञोप्यलोकज्ञो भवेन्मूर्ख तुल्यः। कौटिल्य ने कहा था कि शास्त्र को जानता है लेकिन लोक को नहीं जानता है तो वह मूर्ख के समान ही है। भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में लोकधर्मिता की महिमा का प्रतिपादन किया है। गीता में श्रीकृष्ण ने लोकसंग्रह के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है– लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि। व्यष्टिहित और समष्टिहित के संबंध में गीता का वाक्य है– ...यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः। न तो लोक ही उससे दुखी या उद्विग्न होता है और न ही वह स्वयं ही लोक से उद्विग्न होता है। यह बात भूलने की नहीं है कि शास्त्र का जन्म भी लोक में ही होता है और उसकी प्रतिष्ठा भी लोक में होती है, लोक के द्वारा ही होती है। लोक समुद्र है और शास्त्र मेघ। लोकजीवन महासमुद्र की भांति है। शास्त्र आसमान में जा कर बरसा है, यह ठीक है किन्तु उसका स्रोत समुद्र अर्थात लोकजीवन का अनुभव ही है। लोक सागर है और शास्त्र मेघ। आचार्य वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दों में कहें तो यदि सम्पूर्ण ज्ञान को ब्रह्म के समान चतुष्पाद माना जाय तो वेद या शास्त्रीयचिन्तन में उसके एक पाद की ही प्रतिष्ठा है। त्रिपाद की अभिव्यक्ति लोक के क्रियाशील जीवन में होती है। वेद और लोक : आचार्य वासुदेवशरण अग्रवाल– वैदिक–साहित्य में कितना अंश लोकसाहित्य का है ? अथवा लोकसाहित्य में कितना अंश वैदिकसाहित्य का है? वैदिक–प्रतीकों का है? यह हमारे अनुसंधान का विषय है, जैसे सात मातृकाएं। लोककहानियों की सात सहेलियां। सात परियां। वेद का पद है– सप्त स्वसारः।

लोक और शास्त्र के प्रश्न पर विभिन्न लोकवार्ताविदों ने विभिन्न दृष्टियों से सोचा है। कुछ अध्येताओं ने 'शास्त्र ' में अहंचैतन्य और 'लोक' में समष्टि चैतन्य को देखा है, कुछ लोकवार्ताविदों ने लोक को गाँव और शास्त्र को नगर माना है। पुराने मानवविदों की दृष्टि में लोकवार्ता असभ्य, अर्द्धसभ्य, जंगली, आदिवासी, मूढ़, अपढ़, निरक्षर, गँवार और अज्ञानी तथा असंस्कृत लोगों का ज्ञान था। अनेक मनोविज्ञानी लोकमानस में आदिम–मानस को खोजते हैं। अनेक कलाविद् शास्त्र में लालित्य तथा लोक में अनगढ़ को देखते हैं। कुछ समाजशास्त्री शास्त्र को शासक–वर्ग के अस्त्र के रूप में देखते हैं तथा लोक और शास्त्र में वे मुनिमानस और जनमानस का वही द्वन्द्व देखते हैं, जिसे समाजशास्त्री समाज में वर्गसंघर्ष के रूप में पहचानते हैं। कुछ समाजशास्त्री कहते हैं कि शास्त्र बाँधता है और लोक उन्मुक्त करता है, जबकि कुछ समीक्षकों ने शास्त्र में वैदिक–परम्परा और लोक में आगम–परम्परा को चीन्हा है। कुछ विचारक शास्त्र में तर्क और लोक में श्रद्धाभाव का साक्षात्कार करते हैं। किसी की दृष्टि में शास्त्र सिद्धांत और आदर्श है तथा लोक व्यवहार है। कुछ इतिहासविदों ने 'शास्त्र में 'आर्य' और 'लोक' में 'अनार्य' को खोजा है जबकि अन्य कई आलोचकों ने वर्ण और जाति की दृष्टि से शास्त्र और लोक के पौरोहित्य को पहचानने का प्रयास किया है। अनेक विद्वान शास्त्र को लिखित–परम्परा तथा लोक को वाचिक–परम्परा के रुप में देखते हैं। शास्त्र और लोक की अनन्तान्त–प्रक्रिया से संस्कृति का विकास होता है। राधा :संस्कृति के अध्ययन की लोकोन्मुखी दृष्टि क्यों आवश्यक है इसके उदाहरण के लिए आप राधा को ही ले लीजिये। भागवत में राधा का नाम नहीं है। आधे श्लोक में एक अस्पष्ट सा संकेतमात्र है, जबकि भारत के विभिन्न जनपदों के लोकसाहित्य में

राधाकी प्रेमकथा का अछोर–विस्तार है। संसार में लोकगीत–परंपरा की इतनी उदात्त, इतनी सूक्ष्म, इतनी शास्त्रीय और तात्विक व्याख्या का उदाहरण शायद ही मिल सके, जैसी व्याख्या और जैसी स्वीकृति गोपगीतों की नायिका राधा और उसकी रासलीला की हुई है। राधा के लोकायत–उत्स को लेकर मनीषियों ने कितना लिखा है। राधा का लोकायत उत्स एक ओर संस्कृत तथा भारतीय–भाषाओं का विशाल–साहित्य है, जिसमें राधा ग्वालिनी, गोपसुता, गूजरी, अहीर, ब्रजवधू और ग्राम्या हैं– आभीरेन्द्रतनया। कहीं गायों का दूध दुह रही हैं तो कहीं पनघट पर पानी भर रही हैं, गोबर पाथ रही हैं, दही बेचने जा रही हैं। घोषनिवासिनी हैं। श्री रूपगोस्वामी के उज्ज्वलनीलमणि में कितने ही ऐसे चित्र हैं। लोकसाहित्य का महत्व तभी समझ आ सकता है, जब हम लोक और शास्त्र के समुद्र और मेघ जैसे आदान–प्रदान को समझ सकें। यह लोक और शास्त्र के अन्तरावलंबन का अद्‌भुत उदाहरण है। यहां एक बात तो हमें व्यास के ब्रह्मसूत्र की पहले ध्यान रखनी होगी– लोकवत्तु लीला कैवल्यं। लीला लोकवत तो है किंतु लौकिक नहीं है। अलौकिक को लौकिक के द्वारा समझने का प्रयास है। अज्ञात को ज्ञात विंबों से ही तो आप समझाते हैं। लीला इतिहास की घटना नहीं है। इतिहास की घटना देशकाल से आबद्ध है, लीला देशकाल से निर्बंध है। लोकसंस्कृति की दिशा व्यष्टि से समष्टि, शास्त्र से लोक, विशेष से सामान्य और सत्ता से जन की ओर है। संस्कृति को समझने के लिये लोकवार्ता के अध्ययन के बिना कोई दूसरा विकल्प नहीं है। जनपदीय–भारतवर्ष के साक्षात्कार करना ही होगा। जो लोग समझते हैं कि संस्कृति की रचना आचार्य–मानस या शास्त्र–मानस करता है। वे लोक की भूमिका को देख ही नहीं पाते क्योंकि लोक निर्गुणब्रह्म की तरह व्याप्त होता है। सर्व को कोई कैसे प्रत्यक्ष कर सकता है? एक और बहुतों को तो देखा जा सकता है, सर्व को कैसे देखा जायेगा? वह अदृश्य रह कर ही युग की रचना करता है। भवन की बुनियाद तो अदृश्य ही होती है न।

जैसे भाषा का विकास लोकजीवन में होता है, उसी प्रकार मिथक तथा लोकवार्ता का विकास भी लोकजीवन में होता है। जैसे भाषा अपौरुषेय है, उसी प्रकार मिथक तथा लोकवार्ता भी अपौरुषेय हैं अर्थात् कोई नहीं बतला सकता कि किसने भाषा बनायी ?किसने उसमें परिवर्तन किया ? इसी प्रकार लोकवार्ता और मिथक की रचना किसने की और किसने विकास किया, यह भी कोई नहीं बतला सकता। जैसे भाषा परंपरागत होती है, उसी प्रकार मिथक तथा लोकवार्ता भी परंपरागत हैं। जैसे जीवन मे प्रवाह में भाषा में परिवर्तन होते हैं, उसी प्रकार जीवन मे प्रवाह में मिथक तथा लोकवार्ता में भी परिवर्तन होते हैं। जैसे भाषा का अध्ययन हम तुलनात्मक, विकासात्मक, विवरणात्मक, विश्लेषणात्मक, विवरणात्मक–प्रणालियों से करते हैं, वैसे ही मिथक और लोकवार्ता का अध्ययन भी इन प्रणालियों से किया जाता है। जैसे भाषा में शब्द और वाक्य की रचना, ध्वनिविज्ञान, रूपविज्ञान, अर्थविज्ञान होते हैं, उसी प्रकार मिथक और लोकवार्ता में कथारूढ़ि, मोटिफ Motif, कथामानक जलचम तथा आद्यबिंब। Rchetype होते हैं। भाषाविज्ञान की सीमा वैखरीवाणी तक ही है किन्तु लोकवार्ता और मिथक को मध्यमा, पश्यन्ती तथा परावाक् तक की यात्रा करनी होगी। शब्द के तद्‌भवीकरण की पूरी प्रक्रिया लोकजीवन में ही चलती है। लोक के प्रत्यक्ष व्यवहार में ही मुहावरों का उद्‌भव और विकास होता है। इसी प्रकार से देशज शब्द का जन्म लोकजीवन में ही होता है। लोक की जीवन्त भाषा का उदाहरण– गरम पानी तो गरम पानी ही है किन्तु कितना गरम है, इसके लिये लोक में बहुत शब्द हैं, जैसे– चरचरौ, भभकतौ, गुनगुनौ, फुकतौ, सुहाँतौ, ठंडे पानी के लिये– कंटान, गरन्त, काँटे सौ। झगड़े के लिये हमारे पास कितने शब्द हैं झझ धक्कामुक्की, कहासुनी, लैलै दैदै, चंचमचेंचा, हाथापाई, बाज गयी, फौजदारी, लठालठी, गटापटी, तकरार, मनचाल, महाभारत, जूझ गये, पमाड़ौ आदि। नींद के लिये शब्द हैं झझ ओंघा, घँघेला, झपकी, घैरघुट्ट, कुंभकरनी। महर्षि पतंजलि ने अपने महाभाष्य में भाषा–प्रयोग के संबंध में दो सूत्र दिये हैं : लोकतः प्रमाणम्। लोकविज्ञानाच्च सिद्धम्। भाषा, किताब में नहीं लोकजीवन में रहती है, इसी प्रकार से संस्कृति भी किताब में नहीं लोकजीवन में रहती है ये दोनों सूत्र भाषा के लिए तो महत्त्वपूर्ण हैं ही, मानवजीवन के प्रत्येक व्यवहार में भी सिद्ध हैं।

संसार में लोकतंत्र के सूत्रपात और लोकवार्ता के अध्ययन के बीच एक निश्चित संबंध–सूत्र है। दूसरे महायुद्ध के बाद संसार ने पहचान लिया था कि संप्रभुता का स्रोत राजसिंहासन या राजमुकुट में नहीं है, संप्रभुता का स्रोत सामान्य–जन समष्टिजन में ही है और और इस प्रकार से लोकतन्त्र के रूप में

लोकशक्ति का आविर्भाव हुआ, भले ही उसका दमन करने के प्रयास भी निरन्तर चलते रहते हैं। गहराई से सोच लेने की बात है कि यह लोकतन्त्र किसी दिन आसमान से नहीं टपक पड़ा था। यह लोकतन्त्र किसी सुलतान या बादशाह ने बख्शीश में भी नहीं दे दिया था। यह लोक के उद्वेलन का परिणाम है। यह लोकतन्त्र लोकजीवन के युगयुगीन संघर्ष का परिणाम है। लोकमानस की स्वीकार्यता। वह अस्वीकार कर दे, तो सम्राटों के सिंहासन भी हिल जाते हैं। मनुष्यजीवन के इतिहास पर नजर डालिये, क्रूर आक्रान्ताओं ने, निर्दय सम्राटों या बादशाहों ने, देशी–विदेशी शासकों और राजाओं ने, अहंकार के मद में डूबे सामन्तों ने लोकजीवन पर कौन–कौन से अत्याचार नहीं किये ? लोकसंस्कृति, लोक आस्था और लोकविश्वास को कुचलने में क्या कसर छोड़ी थी ? किन्तु यह लोक की अपराजेय शक्ति ही तो है कि वे प्रहार और अत्याचार करने वाले इतिहास के मलबे में दब गये, खाद बन गये और लोक की सत्ता ने आज लोकतन्त्र का रूप धारण कर लिया है। लोकवार्ता का अध्ययन करने वाले समझ सकते हैं कि यह लोकचेतना सहस्राब्दियों से विकसित होती रही है। निरंकुश राजाओं को भी भय रहता था कि– लोकोयं किं वदिष्यति ? भारत के संविधान की प्रस्तावना में "हम भारत के लोग" कह कर जिसकी सत्ता को परिभाषित किया गया है, वह लोक का ही वैभव और ऐश्वर्य है। संविधान लोकतन्त्र का शरीर है और आत्मा लोकचेतना। लोकचेतना : जिसका न आयात हो सकता है और न निर्यात। ...लोकतन्त्र और लोकवार्ता दोनों समानता के सिद्धान्त लेकर ही आगे बढ़ते हैं। लोकदृष्टि समानता के सिद्धान्त में ओतप्रोत है, लोकदृष्टि राजमहल और झोंपडी में एक ही हृदय और एक ही बुद्धि, एक जैसा सुख–दुख देखने की अभ्यस्त है। भारत का लोकमानस लोकतन्त्र के दर्शन का विश्वासी है– सबके भले में हमारा भी भला।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की अन्तिम कृति 'लालित्य तत्त्व' इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है कि उसमें लोक–विज्ञान और मिथक को लेकर गंभीर चर्चा है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपनी महत्वपूर्ण पुस्तक "लालित्यतत्व" में बड़े स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि 'मानवशास्त्रियों ने जब से संसार के विभिन्न मानव–समुदायों के जीवन का अध्ययन प्रारंभ किया, तब से मनुष्यजीवन के इतने महत्वपूर्ण सत्य और तथ्य सामने आने लगे कि मानविकी के विभिन्न अनुशासनों की अध्ययन–दृष्टि में युगान्तर–कारी परिवर्तन हुआ। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि मानवचित्त की व्यापकता के रहस्यभेद को लेकर चिन्तन किया गया, आदिमजातियों की जीवनशैली और विश्वदृष्टि की विविधता देखने के बाद जीवविज्ञान, नीतिविज्ञान, मनोविज्ञान आदि पर नये विचार सामने आये। सर फ्रेजर की गोल्डेनब्रो, एडवर्डवेस्टरमार्क की ह्यूमन मैरिज, रिचुअल एंड बिलीफ इन मोरक्को, तथा दि ओरिजिन एंड डिवलपमेंट ओफ मौरल आइडियल्स ने परंपरा का नया स्वरूप और अर्थ प्रमाणित कर दिया। लोकवार्ता ने अभिजात–साहित्य को उसके यथार्थ परिवेश में देखने की दृष्टि प्रदान की। अध्ययन के नये–नये अनुशासन उभर कर आये। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने रेखांकित किया कि नृतत्त्वविज्ञान ने मानवशरीर के विभिन्न अवयवों– कपाल, नासिका, जबड़े आदि की उच्चावचता का हिसाब करके विभिन्न श्रेणी की जातियों की परिकल्पना की थी, परन्तु मानवविज्ञान ने ऊपरी भेदों को बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं माना। मनुष्य का मन सर्वत्र एक है, एक ही प्रकार से सोचने वाला, एक ही प्रकार से उद्‌बुद्ध या अवबुद्ध होने वाला, सब प्रकार से एक। एडवर्ड वेस्टरमार्क ने मनुष्य के अनेक बाह्य आचरणों के परस्पर–विरोधी तथ्यों का संकलन करके नतीजा निकाला कि Man, After All is A single species. सब होते हुए भी मनुष्य एक ही जीवश्रेणी का प्राणी है। ऊपरी भेद नगण्य हैं। मनुष्य का चित्त एक–रूप है, उसकी अवगतियाँ और उदात्तीकरण की वृत्तियाँ समान मार्ग से चलती हैं, उनकी अवनर्मिल और उन्नर्मिल अवस्थाएं निश्चित परिस्थितियों में समान रूप से क्रियाशील होती हैं। जीवतात्विक संवेग समानभाव से सर्वत्र मानस सूक्ष्म बोधों को उकसाते हैं। मानवचित्त एक है।" लोकविज्ञान के अध्ययन के प्रयोजन पर विचार करें तो यह कम बड़ी बात नहीं है।

अभी तक भारत के पांच–छह विश्वविद्यालयों में ही लोकविज्ञान को स्वायत्त–अनुशासन का दर्जा मिल सका है। मैसूर–विश्वविद्यालय में तो लोकवार्ता–संग्रहालय भी है। संस्कृतिमन्त्रालय के अन्तर्गत देश की सबसे बड़ी स्वायत्त–संस्था इन्दिरागांधी राष्ट्रीय कलाकेन्द्र ने लोकवार्ता की कक्षाएं प्रारभ कर दी हैं। इसलिए विश्वविद्यालयों में लोकजीवन, लोकमानस, लोकसंस्कृति आदि को लेकर जो कार्य हुआ है, वह मानवशास्त्र,

समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, इतिहास, भाषिकी, कला, संगीत आदि मानविकी के विभिन्न अनुशासनों के अंतर्गत हुआ है अथवा साहित्य–विभागों के अंतर्गत हुआ। ध्यान देने की बात यह है कि साहित्य –विभागों के अंतर्गत जो कार्य हुआ, स्वाभाविक–रूप से उसमें अध्ययन के साहित्य के ही प्रतिमान प्रभावी रहे। छन्द, रस, अलंकार, बिम्ब आदि। ध्यान देने की बात यह है कि साहित्य–विभागों के अंतर्गत जो कार्य हुआ, स्वाभाविक–रूप से उसमें अध्ययन के साहित्य के ही प्रतिमान प्रभावी रहे। छन्द, रस, अलंकार, बिम्ब आदि। ऐसी ही एक पुस्तक किसी ने भेजी थी, उसे दिखलाते हुए पंडित विद्यानिवास मिश्र जी बोले– मैं लोक–कविता का व्याकरण लिखना चाहता हूँ क्योंकि लोक का शास्त्र, काव्य–शास्त्र के आगे की चीज है।

हमारे विश्वविद्यालयों और यूजीसी के महन्त आज यह नहीं समझ पा रहे कि लोकविज्ञान केवल लोकसाहित्य ही नहीं होता। लोक–साहित्य लोकवार्ता का बहुत सीमित सा अंश है– लोक की शब्दार्थ –सृष्टि। कभी–कभी तो विश्वविद्यालयों के आचार्य लोकसाहित्य को स्थानीयता का अध्ययन समझ लेते हैं, और एक–दो विश्वविद्यालयों की तो मुझे जानकारी भी है, जिनमें उसे इतना संकीर्ण बना दिया गया है कि विद्यार्थी गंगा के घाट को ही गंगा समझ लेता है। उसे शायद वहाँ के आचार्य ने ही नहीं जाना कि लोकविज्ञान विश्वमानव के अध्ययन का विज्ञान है। घाट पर होकर ही गंगा के प्रवाह में अवगाहन किया जा सकता है। लेकिन घाट घाट है और गंगा गंगा है। घाट जहाँ है, वहीं रहता है किन्तु गंगा प्रवाहशील है, जीवन भी प्रवाहशील है परन्तु अब वह दिन दूर नहीं है कि जब लोकविज्ञान को स्वतन्त्र–अनुशासन का दर्जा मिलेगा। डॉ. नगेन्द्र ने कहा था कि लोकविज्ञान का भविष्य तो है ही। सरकार को मासेज से ही शक्ति मिलती है, इसलिये मासेज की ओर सरकार का ध्यान बढ़ेगा ही। मासेज के अध्ययन का भी विस्तार होगा और अध्ययन के रूप भी बढ़ेंगे। प्रत्येक प्रान्त और जनपद के लोकजीवन और लोकसंस्कृति का तुलनात्मक–अध्ययन और कोश बनाया जाना चाहिये। यह सब महत्त्वपूर्ण और उपयोगी होगा।

लोकविज्ञान के क्षेत्र में काम करने की असीम संभावनाएँ हैं–

1. हमारे सामने पहला काम है– संपूर्ण भारतवर्ष के प्रत्येक अंचल, प्रत्येक जाति और जनसमूह के जीवन में उतरकर उसकी लोकवार्ता का संग्रह–संपादन करना।
2. दूसरा काम है– समाजशास्त्र, भाषाशास्त्र, मानवभूगोल, जनवृत्तशास्त्र, सौंदर्यशास्त्र, मिथकशास्त्र, नीतिशास्त्र, दर्शन, इतिहास और मनोविज्ञान की दृष्टि से उस सम्पूर्ण लोकवार्ता–सामग्री का पर्यालोचन तथा उसका अंतरजनपदीय और अंतरप्रदेशीय अध्ययन। इसमें कोई संदेह नहीं कि इस अध्ययन से मानविकी–वर्ग के अनुशासनों में नए अर्थ भर जायेंगे तथा मानव–जीवन और मानव–मन के नए सत्य–तथ्य उद्‌घाटित होंगे।
3. हमारे सामने तीसरा काम है– विश्व के विभिन्न देशों के लोकविज्ञान संबंधी अध्ययन की प्रवृत्तियों और दिशाओं से परिचय प्राप्त करना तथा भारतीय लोकवार्ता तथा विश्व के अन्य देशों की लोकवार्ता के तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा मानव–मन की मूलप्रवृत्तियों की पहचान करना।
4. हमारे सामने चौथा कार्य है वैदिक साहित्य, संस्कृत साहित्य, पालि प्राकृत अपभ्रंश से लेकर हिंदी और प्रादेशिक भाषाओं के संपूर्ण साहित्य का लोकतात्त्विक अध्ययन और लोकतात्त्विक अध्ययन–पद्धति का विकास। लोकवार्ता के अध्येताओं ने अपने–अपने जनपदों में लोकवार्ता की साधना की है, परंतु न तो अभी तक भारत में लोकवार्ता के अध्ययन का इतिहास लिखा जा सका है और न ही लोकवार्ता का यह अध्ययन जनपदों की देहरी लाँघ सका है। भारतीय लोकवार्ताकोश, हिंदी लोकवार्ताकोश एवं पुराकथाओं की अभिप्राय–अनुक्रमणिका भारतीय लोकवार्ता के अध्ययन के लिए बुनियादी आवश्यकताएँ हैं, परंतु वे अभी तक तैयार नहीं हो सकी हैं। यह सब कार्य छोटा–मोटा काम नहीं है, इसके लिए हजारों जनपदीय– अध्येताओं की आवश्यकता है।

विश्व के लोकवार्ताविदों ने भारत के विभिन्न भागों में सर्वेक्षण किये हैं। फिनलैंड के जानेमाने लोकविज्ञानविद प्रो. लौरी होंको ने दक्षिणभारत की– श्री ऐपिक के विभिन्न पाठों को एकत्र किया है। अमेरिका सिरेसस विश्वविद्यालय की प्रो. सूसन एस. वाडले ने ब्रज के ढोला के पाठभेदों को सम्पादित किया

है, केलिफोर्निया के प्रो.पीटर जे क्लाज ने– तुलू की लोकगाथा पर काम किया है। प्रो. एन. गोर्ड़िजन्स गोल्ड ने– राजा नलढ को अपने अनुसन्धान का विषय बनाया है। जायस वर्कलर ने– पंडवानी पर शोध किया है। इंगलैंड के जौन ब्राकिंगटन तथा मैरी ब्राकिंगटन के अनुसन्धान का विषय– रामायण से जुडे लोकगायन हैं। इजरायल की हैडाजैसन ने– लोकगाथा–परंपरा पर काम किया है। चीन के वांगचियान का कार्य– सिंह टोटम पर है। ये उदाहरण हैं।

आज समस्त संसार में, विभिन्न विश्वविद्यालयों और संस्थानों में लोकजीवन का अध्ययन हो रहा है। विश्व में लोकवार्ता के प्रति उत्कट–उत्साह, रुचि और जिज्ञा्सा है। मानव–सम्बन्धी अध्ययनों में लोकविज्ञान (फोकलोरिस्टिक्स) आधुनिकतम अनुशासन के रूप में प्रतिष्ठित हो चुका है। अनुशासनों के नाम भले ही भिन्न–भिन्न हैं। जर्मनी में volks kunde कहते हैं। जर्मनी में Institut Fur Deutsche Und Vergleich Ende Volks Kunde लोकवार्ता के अध्ययन के संस्था है। वहां लोकवार्ता के विश्वकोश पर काम हो रहा है– Enzyklopadie Des Marchens- आस्त्रिया में भी Volks Kunde नाम है। कनाडा में University De Sudbury में भी Deptt De Folklore है। अमरीका में पेंसिल्वेनिया तथा इंडियाना यूनिवर्सिटी में Dept. of Folklife नाम से स्वायत्त विभाग है। केलिफोर्निया में folklore and mythology का विभाग है, लन्दनविश्वविद्यालय में School of orientala दक। Frican Studies तथा Deptt of Cultural life के अन्तर्गत लोकवार्ता का अध्ययन होता है। रूस में भी Ethnography के विभागों में लोकजीवन का अध्ययन किया जाता है। इजराइल में फोकटेल आर्काइव्स हैं। जापान से तो एशियन–फोकलोर नाम से एक शोधपत्र प्रकाशित होता है। चीन में लोकवार्ता की बहुत सी संस्थाएं हैं। आयरलेंड(डबलिन) में आयरिश फोकलोर डिपार्टमेंट है। फिनलेंड में कल्चरल–स्टडीज नाम से विभाग हैं। वहां लो्र्डिक इंस्टीट्यूट आफ़ फोकलोर है। वहां के लौरीहों को तो बहुत ही जानेमाने लोकवार्ताविद् हैं। अर्मीनिया में एथ्नोग्रैफी के अन्तर्गत लोकवार्ता का अध्ययन करते हैं। हंगरी में भी Ethnografical Institute है।

अब समय आ गया है कि उत्तरभारत के विश्वविद्यालय स्वायत्त अनुशासन के रूप में लोक–विज्ञान को प्रतिष्ठित करें।

❧★☙

पाणिनि का 'अष्टाध्यायी' एवं उनका भाषिक योगदान

कमलाकांत त्रिपाठी*

"पाणिनीय व्याकरण मानव–मस्तिष्क की प्रतिभा के उस महत्तम आश्चर्य का नमूना है जो किसी दूसरे देश में आज तक सामने नहीं आई।" (प्रो. मोनियर विलियम्स)

"पाणिनीय व्याकरण मानव–मस्तिष्क की सबसे महान रचनाओं में से एक है।" (प्रो. टी. शेरवात्सकी, लेनिनग्राद)

पाणिनि के काल के बारे में निश्चित जानकारी नहीं है। उन्हें सातवीं सदी ई. पू. से लेकर पाँचवीं सदी ई.पू. तक के बीच रखा जाता है। इतना निश्चित है कि उनके समय तक आते–आते वैदिक युग की मानक भाषा केवल आर्ष ग्रंथों तक सीमित रह गई थी; व्यवहार अर्थात् बोलचाल में उससे उद्भूत भाषा का एक परिवर्तित रूप प्रचलित हो गया था, जो अलग–अलग इलाक़ों और अलग–अलग समुदायों में भिन्नता लिए हुए था। ऐसे में इस वैदिकेतर भाषा के विभिन्न रूपों को परिष्कृत और संस्कारित कर एक ऐसी समावेशी और सर्वमान्य मानक भाषा की निर्मिति का दुस्तर कार्य पाणिनि द्वारा सम्पन्न हुआ, जो एकरूप और चिरंजीवी होकर युगों–युगों के उत्कृष्ट सृजन को अपने भीतर सँजोते हुए, भारतीय प्रतिभा का कालातीत दर्पण बन गई।

पाणिनि के जन्मस्थान और उनकी कर्म–भूमि को लेकर उतना विवाद नहीं है। यह लगभग निर्विवाद है कि वे उत्तर–पश्चिमी भारत में पुष्कलावती नगर के पास के रहनेवाले थे, जो इलाक़ा तब गांधार कहलाता था। पेशावर घाटी में आज के पाकिस्तानी शहर चरसड्डा के पास पुष्कलावती के अवशेष मिले हैं। पाणिनि के भाष्यकार पतंजलि (दूसरी सदी ई.पू.) के एक संदर्भ तथा अष्टाध्यायी में उपलब्ध एक उल्लेख के आधार पर जिस गाँव में उनका जन्म हुआ था उसका नाम शलातुर था, जो आज भी चरसड्डा के सीमांत पर मौजूद है। चीन से भारत आते समय ह्वेनसांग (सातवीं सदी) शलातुर से होकर आए थे और उन्होंने अपने यात्रा–विवरण में उस समय वहाँ पाणिनि की एक मूर्ति के विद्यमान होने का उल्लेख किया है।

पतंजलि ने पाणिनि को दाक्षीपुत्र कहा है जिससे उनकी माता का नाम दाक्षी इंगित होता है। एक विद्वान (रामभद्राचार्य) ने महज़ व्युत्पत्तिमूलक अनुमान के आधार पर उनके पिता का नाम पाणिन बताया है, जो संदेह से परे नहीं है।

पाणिनि के समय वैदिक भाषा से उद्भूत जो भाषा व्यवहार में प्रचलित थी, उसमें एकरूपता लाने और उसके मानकीकरण के लिए उसे व्याकरण के अनुशासन में बाँधने का प्रयास पहले भी हुआ था, किंतु संबंधित आचार्यों में मतैक्य नहीं था और किसी का मत सर्वमान्य नहीं हो सका था। पाणिनि ने उस संक्रमण काल की इस कठिन चुनौती को स्वीकार किया। उन्होंने विभिन्न शाखाओं की वैदिक संहिताओं, ब्राह्मण ग्रंथों, आरण्यकों और उपनिषदों का गहन अध्ययन कर उनकी शब्द–संपदा को सँजोया। फिर अपने समय में देश के भिन्न–भिन्न भागों में प्रचलित लोक–भाषा के भिन्न–भिन्न रूपों का सूक्ष्म निरीक्षण किया। दूर–दूर तक यात्राएँ कर विभिन्न समुदायों के विभिन्न पेशों में लगे लोगों द्वारा व्यवहृत शब्दों का संकलन और उनकी व्युत्पत्ति का विश्लेषण किया। ब्राह्मण, क्षत्रिय, सैनिक, व्यापारी, किसान, रँगरेज, बढ़ई, रसोइए, मोची, ग्वाले, चरवाहे, गड़रिए, बुनकर, कुम्हार आदि अनगिनत पेशेवर लोगों के पेशों में विशेष रूप से प्रयुक्त होनेवाले शब्दों का एक विशाल भंडार एकत्रकर उन्होंने अपनी समावेशी दृष्टि से उन्हें सर्व–स्वीकार्यता और नियमबद्धता की कसौटी पर कसा। फिर वैदिक भाषा के यास्क–प्रभृत वैयाकरणों तथा प्रचलित भाषा के अपने से पहले के आचार्यों के मतों का सम्यक समाहार किया। एक पूर्व आचार्य शाकटायन का मत था कि सभी संज्ञा शब्द धातुओं में प्रत्यय लगाकर बने हैं। पाणिनि ने मोटे तौर पर इस प्रमेय को मान लिया किंतु इसमें

***प्रख्यात चिंतक एवं लेखक, 40/891, कुवेम्पू नगर, हिण्डाल्गा, बेलगावी, कर्नाटक–591108।**

इतना जोड़ दिया कि बहुत–से ऐसे शब्द लोकजीवन के व्यवहार में आ गए हैं जिनकी धातु और उसमें लगे प्रत्यय पकड़ में नहीं आते। इस तरह विपुल सामग्री एकत्रकर उसके सूक्ष्म मनन–विश्लेषण के उपरांत उन्होंने आठ अध्यायों के अपने अद्‌भुत ग्रंथ अष्टाध्यायी की रचना की, जिसमें उपरोक्त सामग्री का ऐसा सांगोपांग और युक्तिसंगत विवेचन है कि प्रचलित भाषा के पाणिनि के पहले के व्याकरण–ग्रंथ अप्रासंगिक होकर लुप्त हो गए; उनके बारे में आज उतना ही ज्ञात है जितना अष्टाध्यायी में आए उनके संदर्भों में उपलब्ध है।

पाणिनि ने अपनी मौलिक प्रतिभा से धातुओं (roots) से नए–नए शब्द निर्मित करने की एक वैज्ञानिक पद्धति भी नियम–बद्ध कर दी। फलस्वरूप विपुल क्षमतावाली जिस एकरूप मानक भाषा की निर्मिति हुई, उसी का नाम संस्कृत (जिसका संस्कार या परिष्कार किया गया हो) है। यह मुख्यतः पाणिनि का ही योगदान है कि उनके द्वारा गढ़ी यह मानक भाषा काल के अनवरत प्रवाह के साथ सहस्राब्दियों की मेधा अपने अंतस में समेटे अपनी अविच्छिन्न एकरूपता में एक अजस्र सांस्कृतिक जलस्रोत–सी प्रवाहित होती हम तक पहुँची है। इस तरह जिसे हम प्राचीन भारतीय संस्कृति के नाम से जानते हैं उसकी निर्मिति के भाषायी उपादान और उसके प्रवाह की निरंतरता को अक्षुण्ण रखने में पाणिनि–निर्मित संस्कृत भाषा का योगदान अप्रतिम है।

पाणिनि ने घूम–घूमकर लोकभाषा के जिस बहुमुखी वैभिन्य और विस्तार को अपनी आँखों से देखा था, उसके बिना भाषा का वह मानक किंतु सर्वग्राह्य रूप मूर्तिमान नहीं हो सकता था जिसने पूरे देश को सांस्कृतिक एकता के सूत्र में बाँधकर उसे एक अविभाज्य सांस्कृतिक इकाई बना दिया। इस तरह अपनी सांस्कृतिक बहुलता में अंतर्भूत एकता के लिए यह देश पाणिनि का हमेशा ऋणी रहेगा।

कहना न होगा, आज हिंदी को सारे देश में ग्राह्य बनाने के लिए ऐसी ही किसी प्रतिभा और उसके द्वारा ऐसे ही अध्यवसाय की ज़रूरत है।

पाणिनि ने इस प्रक्रिया में भाषाशास्त्र और व्युत्पत्ति शास्त्र के जिन सिद्धांतों की खोज की वे वैश्विक स्तर पर भाषाशास्त्रीय ज्ञान की धरोहर बन गए। 19वीं शताब्दी में योरोप अष्टाध्यायी से परिचित हुआ और तब फ्रैंज़ बॉप (Franz Bopp) के माध्यम से इस ग्रंथ ने आधुनिक भाषाशास्त्रीय विमर्श को एक नई दिशा प्रदान की। फर्डिनैंड डि सॉसर (Ferdinand de Saussure), लिओनार्ड ब्लूमफ़ील्ड (Leonard Bloomfield), रोमन जैकॉब्सन (Roman Jakobson) और फ़िरट्स स्टाल (Frits Staal) जैसे भाषाशास्त्रियों ने अष्टाध्यायी के प्रमेयों पर चलकर ही अपनी स्थापनाएँ स्थिर कीं। अष्टाध्यायी के अध्ययन के आधार पर ही फ़िरट्स स्टाल (1930–2012) ने यूरोपीय भाषा–समुदाय पर भारतीय विचारों के प्रभाव का आकलन किया।

पाणिनि ने भाषारूपीय (Morphological) विश्लेषण का जो सिद्धांत प्रतिपादित किया था वह बीसवीं सदी के मध्य तक सामने आए सभी पश्चिमी सिद्धांतों से अधिक उन्नत माना जाता रहा (Encyclopedia Britannica.2013, www.britannica.com)। समासीकृत संज्ञाओं (Noun Compounds) पर उनकी विवेचना आज भी भाषाशास्त्र में समासीकरण के सिद्धांतों का मूल आधार है और इन सिद्धांतों में 'बहुब्रीहि' तथा 'द्वंद्व' जैसे शब्द संस्कृत से ही उधार लिए गए हैं। पाणिनि के भाषागत सूक्ष्म निरीक्षण का जो स्तर है, ग्रीक और लैटिन के वैयाकरणों में उसकी छाया तक नहीं मिलती। यही कारण है कि आज भारत ही नहीं, पूरा विश्व कोषविज्ञान (leÛicography), भाषारूप–विधान (Morphology), वाक्य–विन्यास (syntaÛ) और अर्थ–विधान (Semantics) में पाणिनि की अनेक सुविचारित और सुसंगत अवधारणाओं का वाहक है।

यहाँ यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि पाणिनीय व्याकरण भारतीय विचार–पद्धति में अध्यात्मेतर, लौकिक दृष्टि का प्रवेश–बिंदु है। (Bloomfield, स.,1929 'Review of Liebich, Konkordanz Panini & Candra', Language (Journal) 5, 267–276)। पाणिनि की अष्टाध्यायी इसी लौकिक दृष्टि की भाषाशास्त्रीय अभिव्यक्ति है।

पाणिनि का एक–एक सूत्र और उसमें प्रयुक्त एक–एक शब्द इतने प्रामाणिक हैं कि उनमें हमें शब्द–कोष, व्युत्पत्ति, भाषारूप, अर्थ–विधान, वाक्य–विन्यास से सम्बंधित बारीक ज्ञान ही नहीं मिलता, उनके द्वारा दिए गए उदाहरणों और समानधर्मा वैयाकरणों के संदर्भों से तत्कालीन लोक–व्यवहार,

आर्थिक–सांस्कृतिक–सामाजिक–राजनीतिक जीवन तथा भौगोलिक संरचना का यथार्थ ख़ाका भी उभरता है। इस तरह अष्टाध्यायी महज़ व्याकरण और भाषाशास्त्र का ग्रंथ नहीं है, बहुआयामी इतिहास और भूगोल का समग्र दर्पण भी है (जिसके कुछ अंश का संक्षिप्त उल्लेख अष्टाध्यायी की विषय–वस्तु के संदर्भ में नीचे किया गया है)।

अष्टाध्यायी :– अष्टाध्यायी में कुल 3996 सूत्र (याद करने की सुविधा के लिए घनीभूत, अल्पतम शब्दों और संगर्भित अर्थोंवाले सूक्ष्म और स्वयं में पूर्ण नियम) हैं। इन्हें आठ अध्यायों में बाँटा गया है और प्रत्येक अध्याय के चार–चार पाद हैं। इसके अतिरिक्त अष्टाध्यायी के तीन परिशिष्ट हैं :–

1. चौदह माहेश्वर सूत्र–– ये अष्टाध्यायी के प्रारम्भ में दिए हुए वर्णों या ध्वनियों (चीवदमउमे) के 14 वर्गीकरण हैं।
2. धातुपाठकृपाणिनि ने अपने संकलित शब्द–भंडार से धातुओं (तववजे) को अलग छाँटकर कुल 1943 धातुओं की सूची बनाई है। ये धातुएँ दो प्रकार की हैंकृएक, जो पहले साहित्य में प्रयुक्त हो चुकी थीं; और दोकृजो पाणिनि को लोकजीवन में प्रचलित बोलचाल की भाषाओं में मिलीं।
3. गणपाठकृये उन समूहों या समुदायों की कोषीय सूची है जिनके गुणों में पाणिनि को समानता दिखाई पड़ी थी।

माहेश्वर या शिव के चौदस सूत्र संस्कृत वर्णमाला के चौदह उपसमूह हैं जो पाणिनि के पहले से प्रचलित थे। इनकी उत्पत्ति लोकोत्तर मानी जाती है। इस सम्बंध में यह श्लोक बहुत प्रचलित है––

नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपञ्चवारम्।
उद्धर्तुकामो सनकादिसिद्धानेतद्विमर्शे शिवसूत्र जालम्।।

(तांडव नृत्य के अवसान पर नटराज शिव ने सनकादि (सनक, सनातन, सनकनंदन, सनत्कुमार) ऋषियों के उद्धार की कामना से चौदह (नव+पञ्च) बार डमरू बजाया। इस प्रकार चौदह सूत्रों का यह जाल प्रकट हुआ।)

चौदह माहेश्वर सूत्र इस प्रकार हैं–

- अ इ उ ण्
- ऋ ऌ क्
- ए ओ ङ्
- ऐ औ च्
- ह य व र ट्
- ल ण्
- ञ म ग ण न म्
- भ ञ्
- घ ढ ध ष्
- ज ब ग ड द श्
- ख फ छ ठ थ च ट त व्
- क प य्
- श ष स र्
- ह ल्

वर्णमाला का यह वर्गीकरण याद करने में इतना सुगम है कि बचपन में लघु सिद्धांत कौमुदी घोखते समय मुझे पता ही नहीं चला कि ये कब याद हो गए। पहले का बहुत कुछ भूल जाने के बावजूद ये भूलने का नाम नहीं लेते। इनकी लयबद्धता में अपूर्व संगीत है और पंडित जसराज ने इन्हें शास्त्रीय संगीत की तर्ज़ पर कोरस में गाया है, जिसकी सी.डी. उपलब्ध है। उसे सुनते हुए वस्तुतः डमरू की–सी आवाज़ का आभास होता है। यह संस्कृत की संपूर्ण वर्णमाला है और यही पाणिनीय व्याकरण का मूल आधार है। इसमें हर सूत्र का अंतिम हलंत अक्षर वैसे तो शोभामूलक है जिसे इत् (भाष्यकारों द्वारा अनुबंध) कहा जाता है किंतु संक्षेप

के लिए वह अपने पूरे वर्ग का संकेतक है। जैसे च् से पूरे चौथे समूह "ऐ औ च्" का बोध हो जाता है। अष्टाध्यायी का पहला सूत्र है 'वृद्धिरादैच्' जिसमें अंतिम वर्ण च् तीनों ध्वनियों ऐ औ च् को इंगित करता है। प्रत्येक वर्ग को प्रत्याहार कहा जाता है और उसके संक्षिप्त प्रयोग की एक सुविचारित पद्धति है जो सभी पाणिनीय सूत्रों में एकरूप प्रयुक्त हुई है।

गणपाठ का परिशिष्ट तत्कालीन इतिहास की एक झाँकी के लिए बहुत बहुमूल्य है। एक गण सगोत्रों का है। वैसे तो वैदिक काल से सात गोत्र ही चले आ रहे थे किंतु पाणिनि के काल तक उनका बहुत विस्तार हो चुका था। पाणिनि ने वैदिक और लौकिक दोनों भाषाओं में उपलब्ध कुटुंब–नामों की एक विस्तृत सूची बनाई। एक गोत्र या कुटुंब में सपिंड, स्थविर (बूढ़े) पिता, पुत्र, पौत्र आदि के नाम कैसे रखे जाते थे, पाणिनि ने इसका विस्तार से उल्लेख किया।

गणपाठ में पाणिनि की एक और सूची भौगोलिक है। उन्होंने अपने उत्तर–पश्चिमी प्रांत के 500 ऐसे ग्रामों का नामोल्लेख किया है जो यथार्थ में थे। पाणिनि ने पंजाब के दो गाँवों के नाम दिए हैं सुनेत्र और शैरीषक जिनकी पहचान आज के सुनेत और सिरसा से होती है। पंजाब में अनेक जातियों के नाम उन गाँवों पर थे जहाँ वह निवास करती थी या जहाँ से उसके पूर्वज आए थे, जिन्हें 'अभिजन' कहा जाता था। इन दोनों स्थानों से बननेवाले नाम पुरुषों के नाम के आगे उपनाम के रूप में जुड़ जाते थे।

पाणिनि ने अपने प्रदेश के पूर्व में स्थित त्रिगर्त भूखंड का ज़िक्र किया है जो आज का कुल्लू–काँगड़ा है। पश्चिम के पहाड़ी प्रदेश में निवास करनेवालों की संस्कृति तथा सामाजिक और प्रशासनिक व्यवस्था पाणिन के काल में भी जनजातीय या क़बीलाई थी। उसके उत्तर में दरद भूखंड था जिसे आज गिलगित कहते हैं और दक्षिण में था सौवीर जो आज का सिंध है। पाणिनि ने पश्चिमोत्तर पहाड़ी प्रदेश के क़बीलों की विस्तृत सूची बनाई और उनकी शासन–पद्धति का अध्ययन किया, जिसे ग्रामणी शासन कहते थे। ग्रामणी वस्तुतः जनजाति के मुखिया की पदवी थी। उनकी पंचायत को व्रातपूग, संघ या गण कहते थे, जिसे अब जिरगा कहते हैं। सभी संघों की शासन–प्रणाली एक–सी नहीं थी। इनमें से कुछ क़बीले लूटपाट से जीविका चलाते थे जिन्हें पाणिनि ने 'उत्सेदजीवी' कहा है। इन क़बीलों के बहुत से नाम गणपाठ में मिलते हैं, जैसे देवदत्त (जो किसी क़बीले का पूर्वपुरुष रहा होगा), आप्रीत और मधुमंत। सार्वभौम इस्लाम धर्म स्वीकार करने के बाद भी इनकी क़बीलाई जन–संस्कृति और शासन–व्यवस्था में विशेष अंतर नहीं आया है।

गणपाठ की सूचियों में एक सूची जनपदों की है। मध्य एशिया के ऊपरी भाग में वंक्षु नदी के उत्तर कंबोज जनपद स्थित था, पश्चिम में कच्छ, पूरब में सूरमस (आज के आसाम प्रदेश की सूरमा घाटी) और दक्षिण में गोदावरी के तट पर अश्मक। इन सीमाओं के बीच मध्यदेश का विशाल भूभाग भी भिन्न–भिन्न जनपदों में बँटा हुआ था।

पाणिनि ने आर्थिक जीवन के भाषाशास्त्रीय पक्ष का अध्ययन करने के लिए बाज़ार में प्रचलित सिक्कों की भी सूची बनाई। शतमान, कार्षापण, सुवर्ण, अंध, पाद, माशक, त्रिंशत्क (तीन मासे की तौल का सिक्का) और विंशतिक (बीस मासे की तौल का सिक्का)। कुछ समूह जिन्स के विनिमय (Barter) से काम चलाते थे, जिसे 'निमान' कहा जाता था। अष्टाध्यायी का 3996 सूत्रोंवाला मुख्यभाग इतना जटिल और तकनीकी है कि उसका वर्णन ऐसे किसी आलेख में असंभव है। संस्कृत व्याकरण के पारंपरिक छात्र पहले तो सूत्रों को रट जाते हैं, फिर उनकी व्याख्या समझने में दस–दस साल लगा देते हैं। किंतु एक बार व्याकरण का अध्ययन कर लेने के बाद उन्हें संस्कृत में महारत हासिल हो जाती है और अलग से कुछ पढ़ने की ज़रूरत नहीं होती। फिर तो वे स्वाध्याय से कुछ भी सीख–समझ सकते हैं। संस्कृत व्याकरण की पद्धति है ही ऐसी।

अष्टाध्यायी पर पतंजलि के महाभाष्य के बाद 8वीं और 15वीं सदी में बहुत महत्वपूर्ण काम हुआ। भट्टोजि दीक्षित (17वीं सदी) का ग्रंथ वैयाकरणसिद्धांतकौमिदी और उसके बाद आए पंडित रामाश्रम का वैयाकरणसिद्धांतचंद्रिका दो ऐसे भाष्य हैं, जो संस्कृत व्याकरण के भारतीय विद्यार्थियों के बीच विशेष लोकप्रिय हैं।

भारत सरकार ने 2004 में पाणिनि की स्मृति में पाँच रुपए का डाकटिकट जारी किया था। जैसा कि उपरोक्त विमर्श से स्पष्ट है, आज सम्पूर्ण विश्व पाणिनि के आधारभूत और उच्चस्तरीय भाषाशास्त्रीय काम के लिए उनका ऋणी है। उनका योगदान शुद्ध रूप से अकादमिक और सेक्यूलर है, जिसका किसी धर्म से कोई अनिवार्य सम्बंध नहीं। ऐसे में यदि पाकिस्तान सरकार उनके जन्म–स्थान शलातुर में उनका कोई स्मारक या संग्रहालय बनवाए तो यह विश्व–संस्कृति के एक महान स्तंभ के प्रति यथोचित सम्मान होगा। क़ायदे से देखा जाए तो पाणिनि अपने जन्म–स्थान की दृष्टि से पाकिस्तान के राष्ट्रीय गौरव हैं। लेकिन अपनी जड़ों से विच्छिन्न और इस विच्छेद को ही अपनी अस्मिता का पर्याय माननेवाले लोगों से ऐसी अपेक्षा करना व्यर्थ है। भारत सरकार की दृष्टि भी कभी सतही सेक्युलरवाद तो कभी खोखले राष्ट्रवाद से राजनीतिक लाभ उठाने के अतिरिक्त कहीं और कहाँ जाती है ! तो भारत सरकार को भी अपनी सांस्कृतिक कृपणता में पाणिनि के नाम पर पाँच रुपए का डाकटिकट जारी करने से इतर कुछ और कैसे सूझेगा?

संस्कृत भाषा की अनन्यता :– संस्कृत जन–भाषा बनने के लिए नहीं बनाई गई थी। जन भाषाएं तो प्राकृत के भिन्न भिन्न स्थानीय रूपों में वजूद में थीं ही। कुछ रचनाकार प्राकृत में ही लिखते रहे। गुणाढ्य की गड्डबहो (बृहद्कथा) बहुत प्रसिद्ध भी हुई। किन्तु क्षेत्रीय भिन्नता के अलावा ये जन–भाषाएं एक ही क्षेत्र में स्वच्छंद विकास के चलते अपना रूप निरंतर बदलती जाती थीं। सामान्य जन में बोली जाने वाली सभी भाषाओं के साथ यही होता है। वे व्याकरण का उल्लंघन करती हैं, फिर नया व्याकरण गढ़ना पड़ता है। फिर उसका भी उल्लंघन होता है। शेक्सपियर तक के समय की अंग्रेजी आज की अंग्रेजी से थोड़ी भिन्न थी। अपभ्रंश काल की हिंदी तो आज की हिंदी से बिल्कुल भिन्न थी। उसका जो रूप था वह स्थानीय प्राकृत का अंतिम और हिंदी का प्रारंभिक रूप था। एक अर्थ में कह सकते हैं कि भिन्न भिन्न भारतीय भाषाओं के जो रूप आज मिलते हैं वे प्राकृत के ही अद्यतन रूप हैं।

सांस्कृतिक एकता के चलते संपूर्ण देश में एक मानक भाषा की ज़रूरत थी, ऐसी भाषा जिसमें देश के विभिन्न क्षेत्रों में लिखा गया साहित्य उस भाषा को सीखने वालों के लिए हमेशा गम्य बना रहे। इस तरह विभिन्न क्षेत्रों की जनभाषाओं और वैदिक संस्कृत की शास्त्रीय भाषा के शब्दों और उनमें प्रयुक्त धातुरूपों को संग्रहीत कर उनके गहन अध्ययन के आधार पर पाणिनि ने एक मानक और अपरिवर्तनीय भाषा गढ़ी। वही संस्कृत है। संस्कृत यानी वैदिक भाषा के साथ प्राकृत के भिन्न भिन्न क्षेत्रीय रूपों को समाविष्टकर निर्मित की गई संस्कारित भाषा। उसको व्याकरण के नियमों से इस तरह बांधा गया कि समय और स्थान के अनुरूप उसका रूप परिवर्तन न हो और उस भाषा में लिखा गया साहित्य और अन्य सामग्री हर क्षेत्र में और हमेशा उस भाषा को सीखने वाले विद्वानों के लिए गम्य बनी रहे। वे कुछ नया प्रणयन करें तो वह भी उसी अपरिवर्तनीय भाषा में होने से उस भाषा को सीखनेवाली भविष्य की पीढ़ियों के लिए भी गम्य बना रहे। इस तरह प्राचीन से लेकर अर्वाचीन तक सभी साहित्यकारों और भिन्न भिन्न विषय के विद्वानों द्वारा लिखे गए समग्र को आनेवाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित कर लिया गया।

फिर राज्य विस्तार के चलते भिन्न भिन्न प्राकृतों के इलाक़ों में एक ही राजा का शासन होने से प्रशासनिक कामों के लिए भी उसी एकरूप संस्कृत भाषा का प्रयोग किया जाने लगा जो अधिक सुविधाजनक था।

इस तरह सही अर्थों में एक स्थायी संपर्क भाषा और राष्ट्र भाषा का सृजन हुआ। इस अर्थ में संस्कृत दुनिया की एकमात्र भाषा है जिसने भारत की सांस्कृतिक निरंतरता को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। संस्कृत को इसकी पूर्णता में लाने में पाणिनि के साथ उनकी अष्टाध्यायी के भाष्यकार कात्यायन और पतंजलि का भी अनन्य योगदान है।

संस्कृत ही दुनिया की एकमात्र भाषा है जिसमें हूबहू एक ही अर्थ वाले अनेक शब्दों के पर्यायवाची शब्द पाए जाते हैं। कारण, वे भिन्न भिन्न क्षेत्रों की जनभाषाओं से लिए गए हैं तथा प्रत्यय के माध्यम से संस्कृत की विभक्तियों में ढाल दिए गए हैं। पानी के लिए कर्नाटक और तमिलनाडु में आज भी नीर शब्द का प्रयोग होता है (तमिलनाडु में तन्नी का भी)। उसी तरह बंगाल में जल का प्रयोग होता है। पानी के लिए

कुल 12 पर्यायवाची शब्द मिलते हैं। यदि पाणिनि के समय में कहीं वाटर शब्द प्रचलित होता तो वह भी संस्कृत में समाहित कर लिया गया होता, बाक़ायदे सात विभक्तियों और तीन वचनों के प्रत्यय के साथ– वाटरम् वाटरे वाटरानि...।

यही कारण है कि संस्कृत में व्याकरण के सुनिश्चित नियमों के अनुसार किसी भी भाषा की नई अवधारणा वाले शब्द को लेकर उपसर्ग और प्रत्यय के सहारे संस्कृत में आत्मसात् किया जा सकता है। दूरदर्शन में कभी संस्कृत समाचार सुनें तो बहुत दिलचस्प अनुभव होगा, और यही कारण है कि संस्कृत में नई–नई अवधारणाओं की अभिव्यक्ति के लिए उपलब्ध धातुओं से उपसर्ग और प्रत्यय के सहारे नए–नए और सार्थक शब्द गढ़ने की अनन्य क्षमता भी है।

संस्कृत वह भाषा है जिसमें अधिकांश व्यक्तिवाचक संज्ञाएं भी सार्थक हैं। मिथकीय नाम तो संबंधित व्यक्ति के किसी गुण या उसके जीवन की किसी घटना का संकेत करते ही हैं। विष्णुसहस्रनाम में विष्णु के एक हज़ार नाम हैं और सभी सार्थक।

यही नहीं, संस्कृत शब्दों की व्युत्पत्ति से न केवल उनकी व्याकरणिक उत्पत्ति का बोध होता है, बल्कि उनकी दार्शनिक अवधारणा का भी बोध हो जाता है। रंजयति इति राजा। संसरति इति संसारः। संस्कृत में शकटः गच्छति नहीं हो सकता, शकटः नीयते ही संभव है।

इस तरह संस्कृत अनेक अर्थों में संसार की एक अनन्य भाषा है। इसके इतने लाभ हुए तो कुछ नुक़सान भी हुए। व्याकरण मात्र के सहारे सीखी जा सकने वाली भाषा शिक्षातंत्र के कमज़ोर पड़ने पर अधिकांश जन–समुदाय से दूर होती गई। मानव निर्मित हर चीज़ दोधारी होती है।

ꕥ★ꕥ

नासिरा शर्मा तथा मेहरुन्निसा परवेज के उपन्यासों में अन्तर्विरोध

शबीना यासमीन अंसारी*
डॉ. अंजु दूबे**

सम्पूर्ण जगत में देखा जाए तो हर जगह अन्तर्विरोध देखने को मिलते हैं। प्रकृति से लेकर स्वयं के अन्दर तक किसी न किसी मतभेद का संघर्ष सदियों से चलता आ रहा है और आज भी किसी न किसी रूप में अन्तर्विरोध का स्वरूप बदलता रहता है। दो मतों के बीच विभेद को लेकर वैचारिक संघर्ष ही अन्तर्विरोध होता है या यह कहें कि दो विभिन्न विचारधाराओं को जब एक समान स्तर पर लाने की चेष्टा की जाये तो वहाँ संघर्ष के रूप में अन्तर्विरोध पैदा होता है। यथार्थ और आदर्श कभी एक रेखा पर नहीं चल सकते हैं परन्तु जब इन दोनों बिन्दुओं को हम एक ही रेखा पर देखने की चेष्टा (कोशिश) करते हैं तब टकराहट पैदा होती है और यही टकराहट दो विभिन्न वैचारिक पृष्ठभूमि तैयार करती है।

भारतीय समाज में अन्तर्विरोध सदैव रहे हैं। अन्तर्विरोध जीवंतता का परिचायक होता है। ज्ञानात्मक संवेदना और संवेदनात्मक ज्ञान रचना प्रक्रिया के साथ–साथ चलती है। इस दृष्टि से संवेदना मानवीय मन की हलचलों का लेखा–जोखा है। जब महसूस होने लगता है कि संसार का सुख, मेरा सुख एवं दुनिया का दुख, मेरा दुख है तब ऐसा व्यक्ति अन्तर्विरोधों से पार पाने की कोशिश करता है। आधुनिक भारतीय हिन्दी साहित्य की दो महत्वपूर्ण लेखिकाएँ नासिरा शर्मा और मेहरुन्निसा परवेज भारतीय समाज के अन्तर्विरोध एवं भारतीय समाज की विसंगतियों को उभारने का प्रयास करती हैं। नासिरा शर्मा जहाँ मानवीय मन की कमजोरियों एवं संवेदनात्मक पहलू को अपने उपन्यासों में अभिव्यक्त करती हैं वहीं मेहरुन्निसा परवेज भारतीय समाज के अन्तर्विरोधों एवं भारतीय समाज की विसंगतियों को अपने 'कथ्य' का विषय बनाती हैं।

नासिरा शर्मा अपनी प्रगतिशील सोच के माध्यम से धर्म आधारित भारतीय समाज की दकियानूसी परम्पराओं पर करारा प्रहार करती हैं जबकि मेहरूनिसा परवेज भारतीय समाज की सर्जरी आधुनिक नजरिए से करती हैं। 'ठीकरे की मंगनी' में नासिरा शर्मा लिखती है– ''ठीकरे की मंगनी हुई थी महरूख के जन्म के साथ ही। तेज रफ्तार जिन्दगी जीने वाले एक पुरूष की सत्ता को स्वीकारने के लिए मजबूर कर दिया गया था। उसकी जिन्दगी का सबसे बड़ा हादसा था यह पर महरूख उस सांचे में ढली हुई थी जिसे कोई तोड़ नहीं सकता।''[1] ठोस इरादे और नजरिए ने उसे थोपी हुई सत्ता के खिलाफ खड़ा कर दिया। महरूख कोई साधारण लड़की नहीं है। वह मुस्लिम समाज के अन्तर्विरोधों को सहते हुए भी दो टूक जवाब देने का माद्दा रखती है। भारतीय समाज के अन्तर्विरोधों एवं विसंगतियों के प्रकटन के साथ–साथ आदिवासियों के जीवन संघर्ष का भी चित्रण मिलता है। 'अकेला पलाश' उपन्यास में मेहरुन्निसा परवेज लिखती हैं... पलाश आपकी टहनियों से झड़कर नीचे धरती पर बिखर गया था और पेड़ अपनी फिर वही पुरानी कुरूपता लिए खड़ा था... सुन्दरता का अन्त हो चुका था, हर सुन्दर चीज का यही अन्त है... अपने भले लगते हैं हम बस आँख बन्द रहने तक ही।' कितना बड़ा संदेश छोड़ती है। हर सुन्दर चीज का यही अन्त होता है। कहते है कि हर खूबसूरत चीज बेहद खतरनाक होती है।'[2] आखिर ऐसा अन्तर्विरोध क्यों? जब प्रकृति अन्तर्विरोधमूलक है तो भला मनुष्य कैसे इससे अछूता रह सकता है। जीवनक्रम को आगे बढ़ाने के लिए अन्तर्विरोध का होना जरूरी है। जीवन एक ही ढर्रे पर चलता रहे तो एकांगी हो जाता है, मनुष्य ऊबने लगता है। अतः नासिरा शर्मा एवं मेहरुन्निसा परवेज दोनों ने ही जीवन के अन्तर्विरोध को उभारकर उसे एक संवेदनात्मक धरातल प्रदान किया है। मेहरूनिसा परवेज की संवेदनशीलता का परिचय उनके उपन्यास ''पासंग'' के इस संदेश से होता

***शोधार्थी, हिन्दी विभाग, डी0ए0वी0 कॉलेज (बुलन्दशहर)।**
**** विभागाध्यक्ष–हिन्दी, एसो0 प्रोफेसर, डी0ए0वी0 कॉलेज (बुलन्दशहर)।**

है– ''सच है उस दिन दादी कह रही थी कि पक्की ईंट भी पानी में डाल दो तो वह थोड़े दिन बाद अपने आप धीरे–धीरे धुलने लगती है और एक दिन मिट्टी में बदल जाती है।''[3] मेहरुन्निसा बताना चाहती हैं कि जीवन के संकटों से जूझता हुआ मनुष्य कभी तार–तार होता है तो कभी अपने को समेटकर दोगुने उत्साह से लड़ता–भिड़ता है। यदि वह हाथ पर हाथ धरे बैठा रहे तो स्वयं ही नष्ट हो जायेगा। ऐसी संवेदना का स्तर उसी साहित्यकार में पाया जा सकता है, जिसने स्वयं दर्द भोगा हो। वहीं नासिरा शर्मा 'ठीकरे की मंगनी' में समाज पर कटाक्ष करती हुई कहती है– ''जिन्दगी दमकती है बोसीदा रस्मों के आगे घुटने नही टेकती है बल्कि पुख्ता इरादे के अंगारों पर चलता है। यह जातीय भेदभाव, यह अमीर–गरीब का फर्क, मजहब के नाम पर दकियानूसी ख्यालात, ये सब जिन्दगी के बहाव में पड़ने वाले रोड़े हैं, जिनसे हमें टकराना है, लड़ना है, क्योंकि बहते पानी को अपना रास्ता बनाना ही पड़ता है। इन पत्थरों को हमें तोड़ना ही होगा, इन्हीं हाथों से।''[4] अंतर्विरोध व्यक्तिगत मानसिक और सामाजिक हर धरातल पर साहित्यकारों के साहित्य में परिलक्षित होते है क्योंकि साहित्य समाज का दर्पण होता है इसीलिए साहित्यकार भी कहाँ इससे अछूते रहे हैं। हिन्दी साहित्य के जनवादी कवि मुक्तिबोध के जीवन को उठाकर देंखे तो उनका पूरा जीवन अन्तर्विरोधों से घिरा हुआ दिखाई देता है। उनके जीवन की व्याकुलता, बैचेनी तथा संघर्ष उनके काव्य में स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती हैं। मुक्तिबोध की कविता ''अंधेरे में'' जो हिन्दी साहित्य में एक लम्बी कविता के रूप में जानी जाती है। उसमें उनके व्यक्तिगत, मानसिक तथा सामाजिक अंतर्विरोध और संघर्ष बार–बार दृष्टिगोचर होते हैं जैसे उनकी कविता ''अंधेरे'' में वो लिखते भी हैं–

''कमरों में अँधेरा
लगाता है चक्कर
कोई एक लगातार
आवाज पैरों को देती है सुनाई
बार–बार... बार–बार
वह नहीं दीखता... नहीं ही दीखता
किन्तु वह रहा घूम
तिलस्मी खोह में गिरफ्तार कोई एक।''[5]

यहाँ उसी अन्तर्विरोध की बात मुक्तिबोध करते हैं जो व्यक्ति जीवन के हर धरातल पर महसूस करता है। वहीं हम देखे तो एक स्त्री के जीवन में जितने अन्तर्विरोध दिखाई पड़ते हैं उतने अन्तर्विरोधों से पुरूषों का जीवन घिरा नहीं होता है।

देखा जाए तो स्त्री स्वयं में अन्तर्विरोध मूलक है। प्रकृति ने स्त्री की रचना ही अन्तर्विरोध रूप में की है। कहीं पर गृहणी के रूप में या यूँ कहें समाज में आदर्श नारी के रूप में जीवन के हर रिश्ते माँ, बहन, बेटी, पत्नी, प्रेमिका को ममता, करूणा, दया तथा प्रेम के साथ जीना जानती है, तो वहीं वह बाहर कामकाजी सशक्त महिला के रूप में जानी जाती है। राष्ट्रपति प्रतिभा पाटिल से लेकर मदर टेरेसा जैसी महिलाओं में अन्तर्विरोध देखने को मिलते हैं। वहीं डॉक्टर शशिकला त्रिपाठी लिखती हैं ''नारी सदैव समाज से संघर्ष करती आ रही है। उसका यह संघर्ष कभी सफल होता है कभी असफल। घर परिवार से लेकर शिक्षा–रोजगार आदि के क्षेत्र तक एवं समाज से लेकर पुरूष समाज तक प्रत्येक स्थान पर संघर्ष ही उसकी नियति बन गई है। ''अर्थोपार्जन करने के कारण उनमें आत्मसम्मान व आत्मविश्वास की भावना आई है, विभेदीकरण के बावजूद भी। अतः वे पारस्परिक वर्जनाओं को स्वीकार नहीं कर पाती। ऐसे में वे तनाव की शिकार हुई हैं। उन्हें व्यक्तिगत व समाजगत द्वन्द में जीवन पड़ता है।[6] यहाँ लेखिका उसी अन्तर्विरोध की बात करती हुई दिखाई पड़ती है। जिसका एक स्त्री अपने पूरे जीवन में सामना करती है। हम देखें तो जीवन के हर पहलू से अन्तर्विरोध का गहरा नाता है। नासिरा शर्मा तथा मेहरुन्निसा परवेज दोनों लेखिकाओं ने सामाजिक, व्यक्तिगत तथा मानसिक अन्तर्विरोधों को अपने उपन्यासों में बहुत ही बारीकी से उकेरा है। भोगा गया यथार्थ ही सर्जनात्मक रूप से सहित्यकारों एवं लेखकों को अमरत्व प्रदान करता है और इसी उम्मीद पर दोनों लेखिकाएँ नासिरा और मेहरुन्निसा परवेज अक्षरशः सत्य साबित होती हैं।

नासिरा जी के उपन्यास ''पारिजात'' जिसको 2016 के साहित्य अकादमी पुरस्कार से नवाजा गया है। उसमें नासिरा जी ने बदलते मानवीय मूल्यों का विश्लेषण करते हुए रिश्तों में पड़ी दरारों तथा रिश्तों के बिखराव के हमारे सम्बन्धों पर पड़ने वाले फर्क को बड़ी ही सूक्ष्म दृष्टि के साथ व्यक्त किया है। आधुनिक होने के चक्कर में किस प्रकार व्यक्ति समाज और अपने परिवार से दूर होता जा रहा है। यही टूटन तथा बिखराव आधुनिक मूल्य तथा परम्परागत मूल्यों के बीच अन्तर्विरोध को उत्पन्न करता है। नयी पीढ़ी तथा पुरानी पीढ़ी के बीच एक खाई या टकराहट पैदा होने लगी है। इसी कारण आपसी सम्बन्धों में विघटन उत्पन्न होने लगा है जिससे आधुनिक व्यक्ति अवसाद, घृणा तथा अकेलपन की ओर जा रहा है। प्रेम, त्याग तथा समपर्ण की भावना आज के व्यक्ति से परे जाने लगी है तथा वह आर्थिक रूप से मजबूत होने के पीछे अपने आपको समाज तथा अपने परिवार और सगे सम्बन्धियों से दूर कर रहा है।

इसीलिए आधुनिकता और परम्परागत मूल्यों के बीच या यह कह सकते है कि दो संस्कृतियों के बीच टकराहट उत्पन्न हो रही है। भारतीय समाज के लोग इस प्रकार भारतीय तथा पाश्चात्य दो संस्कृतियों के बीच पिस गये हैं। यहाँ मुक्तिबोध की यह पंक्ति चरितार्थ होती है–

पिस गया मैं दो
पाटों के बीच
ये ट्रेजडी है, नीच

हम अपनों से अधिक महत्व बाहर अपने मित्रों को देते हैं। आधुनिक व्यक्ति अपना सुख अन्दर न तलाश कर बाहर की दुनिया में तलाश रहा है। जिसके कारण वह अधिक अवसाद से गृसित होता जा रहा है। 'पारिजात' उपन्यास इसी का जीता–जागता उदाहरण है– ''ऐलेसन का ध्यान टेसू से ज्यादा अपनी नौकरी पर रहता है वह बहुत ज्यादा पैसा कमाना चाहती है। रोहन को ऐलेसन का यूँ आया के सहारे छोड़ना अच्छा नहीं लगता। एक दिन वह ऐलेसन से कहता भी है कि तुम नौकरी छोड़ दो, नौकरी तो बाद में भी हो सकती है लेकिन टेसू का बचपन फिर लौटकर नहीं आयेगा।''[7]

इस प्रकार मानवीय मूल्यों के बदलते स्वरूप को लेकर समाज में अन्तर्विरोध की स्थिति बनी हुई है। पुरानी पीढ़ी आज की पीढ़ी को और आधुनिक पीढ़ी पुरानी परम्परागत तथा रूढ़िवादी पीढ़ी को स्वीकार नहीं कर पा रही है। प्राचीनता और आधुनिकता के बीच गहरा अन्तर्विरोध संघर्ष का कारण बनता जा रहा है। समाज द्वन्दात्मक रूप में जी रहा है। वहीं अपनी सूक्ष्म दृष्टि से मेहरूनिसा परवेज ने बदलते मानवीय सम्बन्धों के प्रति उत्पन्न अन्तर्विरोधों केा अपने ढंग से एक नई दृष्टि दी है। उनके उपन्यास 'कोरजा' में यही संवेदना अभिव्यक्त हुई है–''पहले जरा किसी की बीमारी की खबर पर अपने पराये जुट जाते थे, वही मौत पर संवेदना प्रकट करने वालों की संख्या तक घटती जा रही है। लोगों के पास अब इन बेकार की बातों के फिजूल की बातों के लिए फुर्सत नहीं है। घर में रहने वाले बड़े–बूढ़े लोग इन बातों से दुखी होते हैं पर यह बहुत कम लोग सोच पाते हैं कि जगदलपुर अब आहिस्ता–आहित्सा शहर होता जा रहा है।''[8] शहरी जीवन और ग्रामीण जीवन दोनों के बीच गहरी खाई बनी हुई है।

उधर देखें तो नासिरा शर्मा जी ने एक और बढ़ते अन्तर्विरोध को अपने उपन्यास के माध्यम से उठाया है– मध्यमवर्गीय परिवार के अन्तर्विरोध। जिसने समाज को सोचने पर मजबूर कर दिया है। यह अन्तर्विरोध समाज में धीरे–धीरे पनपकर मध्यम वर्गीय परिवार में, जो पुराने रीति–रिवाजों तथा आधुनिकता का चोला दोनों ओढ़ने की कोशिश में निरन्तर अपने को संघर्षशील दिशा की तरफ ले जा रहा है। हिन्दू तथा मुस्लिम मध्यवर्गीय लोगों की जिन्दगी एक समान है। आर्थिक रूप से मजबूत बनाने की होड़ में मध्यवर्गीय परिवार सबसे अधिक समाज में संघर्ष कर रहे हैं। नासिरा शर्मा के 'अक्षयवट' तथा 'कुंइया जान' और मेहरूनिसा परवेज के 'कोरजा' उपन्यासों में मध्यमवर्गीय जीवन की जूझ देखने को मिलती है। वही दूसरी तरफ मेहरुन्निसा परवेज आदिवासी जीवन के अन्तर्विरोध भी कोरजा उपन्यास में परिलक्षित करती है। ''कितनी त्रासदी से भरा हुआ होता है आदिवासी जीवन परन्तु अब वो भी अपने अधिकारों के लिए सचेत हो गये हैं। उपन्यास की ये पंक्तियाँ इस बात को सार्थक करती हुई दिखती हैं– ''पैसे की गिनती नही जानने

वाले ये भोले–भाले लोग भी अब पैसे का मोल जानने लगे हैं, पर कम्मो सवाल यह उठता है कि पैसे का मोल करना किसने सिखाया? इनकी संस्कृति को किसने बाजार में ला खड़ा किया? आदिवासी नृत्य, आदिवासी कला का महत्व किसने बताया? और जब वे अपनी अहमियत समझ गये हैं, तब अपने में लौटना कितना मुश्किल होता है।''[9] मेहरूनिसा परवेज ने समाज के आदिवासी जीवन का चित्रण बड़े मार्मिक ढंग से 'कोरजा' उपन्यास में किया है।

समाज में अन्तर्विरोध निरन्तर चलते रहे हैं और निरन्तर चलते रहेंगे क्योंकि प्रकृति ही अन्तर्विरोध मूलक है। अगर हम देखें तो त्रेता युग में जन्मे भगवान राम का जीवन भी अन्तर्विरोधों से अछूता नही रहा। निरन्तर चलने वाले अन्तर्विरोध हमें सृष्टि में किसी न किसी रूप में देखने को मिलते ही रहते हैं। प्रकृति हो चाहे इंसान सब में अन्तर्विरोध दृष्टिगोचर होते हैं। मोहन राकेश के नाटक ''लहरों के राजहंस'' में भी गौतम बुद्ध, नन्द और सुन्दरी तीनों के जीवन में हलचलों और द्वन्दों ने जगह ले रखी थी। गौतम बुद्ध के जीवन में गार्हस्थ और आध्यात्मिकता में अन्तर्विरोध लगातार चल रहे थे। लौकिक तथा अलौकिक के बीच संघर्ष निरन्तर जारी था। वहीं हम गोदान के होरी का चरित्र उठाकर देखते हैं तो बेचारा होरी पूरी जिन्दगी गाय खरीदने में लगा रहता है। ये सभी अन्तर्विरोध समाज में व्यक्तिगत तथा मानसिक स्तर पर किसी भी रूप में देखे जा सकते हैं। हमारा कर्त्तव्य है कि समाज में जो अन्तर्विरोध हैं, उनमें समन्वय बनाने की चेष्टा करें ताकि समाज मे फैलने वाली विसंगतियों को दूर किया जा सके और व्यक्तिगत तथा मानसिक रूप से जो विचार हमें परेशान करते हैं और मानसिक पहल पर जो बैचेनी हमें विचलित करती है, उसको शान्त मस्तिष्क से मंथन करने की आवश्यकता है। बुद्धिजीवी वर्ग का यह दायित्व है कि समाज में किसी भी रूप में उपस्थित अन्तर्विरोधों पर मंथन करें ताकि हमारा समाज एक प्रगतिशील समाज बन सके। सबसे अधिक मंथन की आवश्यकता है। धर्मनिरपेक्षतावादियों और रूढ़िवादियों के बीच टकराव को लेकर, पुराने रीति–रिवाजों को लेकर नये तथा पुराने विचारों को लेकर समाज में दो परिपाटी देखने को मिलती हैं, समन्वय की जरूरत है। लेकिन बदलाव धीरे–धीरे आएगा। धर्म को पढ़कर उनके तर्कों से ही उन्हें पराजित करना होगा।

'अभिव्यक्ति के सारे–खतरे उठाने ही होंगे
तोड़ने ही होंगे
गढ़ और मठ सब।' –मुक्तिबोध

सन्दर्भ–सूची :–

1. ठीकरे की मंगनी (उपन्यास) नासिरा शर्मा, फ्लैप कवर।
2. अकेला पलाश (उपन्यास) मेहरुन्निसा परवेज, पृष्ठ सं0 232।
3. पासंग मेहरुन्निसा परवेज, पृ0 सं0 177।
4. ठीकरे की मंगनी (उपन्यास) पृ0 सं0 29।
5. अंधेरे में (कविता) मुक्तिबोध।
6. भूमण्डलीकरण और भारतीय स्त्री डॉ0 शशि कला त्रिपाठी, कथाक्रम–जुलाई– सितम्बर–2004, पृ0 सं0 68।
7. पारिजात (उपन्यास) नासिरा शर्मा, पृ0 सं0 21।
8. कोरजा (उपन्यास) मेहरुन्निसा परवेज, पृ0 सं0 102।
9. कोरजा (उपन्यास) मेहरुन्निसा परवेज, पृ0 सं0 104।

'रतिनाथ की चाची' : मूल समस्या

डॉ. विनय कुमार*

नागार्जुन के सर्वाधिक चर्चित व प्रशंसनीय उपन्यासों में एक है 'रतिनाथ की चाची'। मैथिली उपन्यास 'पारो' के बाद हिन्दी उपन्यासों की कड़ी में नागार्जुन का यह पहला उपन्यास है। 'रतिनाथ की चाची' का पहला संस्करण 1948 ई. में और दूसरा संस्करण संशोधित होकर 1953 ई. प्रकाशित होता है। नागार्जुन ने इस उपन्यास में मिथिला और मिथिला की लोक–संस्कृति का बड़ा ही जीवंत चित्रण किया है। कई मायनों में 'रतिनाथ की चाची' नामक उपन्यास को आंचलिक उपन्यास कहा जा सकता है। आँचलिकता की ऐसी विहंगम प्रस्तुति बहुत बाद में जाकर रेणु के 'मैला आँचल' में दिखलाई पड़ता है। कई मौकों पर यह अचरज भरी निराशा स्वाभाविक दिखलाई पड़ती है कि आखिरकार किन वजहों से आलोचकों ने 'रतिनाथ की चाची' को आँचलिक उपन्यास नहीं माना।

'रतिनाथ की चाची' के जरिए नागार्जुन ने विधवा–जीवन की करूण कहानी को अभिव्यक्त किया है। गौरी के जरिए उपन्यासकार ने यह माना है कि हमारे समाज में वैधव्य–जीवन एक अभिशाप है। गौरी की मानसिक यंत्रणा को जीवंत करते हुए उपन्यासकार ने विधवाओं की दयनीय अवस्था और उनके शारीरिक, मानसिक और आर्थिक शोषण की ऐसी त्रासद प्रस्तुति की है, जिससे मैथिल समाज और संस्कृति के भीतर के दोहरेपन की परतें खुलकर पाठकों के सामने आ जाती है। इस उपन्यास में गौरी कहती है कि ''हे भगवान्, अगले जन्म में मैं भले ही चुहिया होऊँ, भले ही नेवला मगर चेतनामय इस मानव समाज में फिर कभी पैदा न होऊँ। ओह, जो औरतें किसी विषाद के कारण कुएँ में कूदकर या गले में फंदा डालकर अपने प्राणों का अंत कर लेती है, अवश्य ही पुनः इस मानव–योनि में उनक जीवन नहीं आता.... तो क्या मैं वैसा नहीं कर सकती हूँ।''[1] नागार्जुन की नायिका गौरी का जन्म एक दरिद्र ब्राह्मण कुल में हुआ था। इसी कारण उसके पिता ने वैद्यनाथ झा के कुल गोत्र और उच्च कुलीनता को देखकर गौरी का विवाह उसके साथ कर दिया कुछ ही दिन उपरान्त वैद्यनाथ झा की मृत्यु हो जाती है लेकिन अपने पीछे वह दो बच्चों को छोड़ जाता है। पुत्र का नाम उमानाथ और पुत्री का नाम प्रतिभामा। बड़े होने पर उमानाथ माँ से दूर अपने रोजगार की तलाश में माँ गौरी से दूर रहने लगता है और जैसे–तैसे प्रमिभामा का विवाह भी हो जाता है। गौरी समाज की तरूण विधवा अब अकेले, असहाय जीने को अभिशप्त हो जाती है। गौरी के विधरु देवर जयनाथ का पुत्र रतिनाथ उसके साथ ही रहता है। रतिनाथ को माँ की ममता व प्रेम सब कुछ गौरी से ही हासिल होता है। पारिवारिक बँटवारा हो जाने के कारण विधुर देवर जयनाथ का घर अलग होता है और गौरी का अलग। लेकिन आँगन सबका एक ही होता है। देवर के साथ उसका व्यवहार बेहद पवित्र है, किन्तु उसका तरूण देवर अपनी कामवासना का शिकार गौरी को बनाता है जिसके फलस्वरूप विधवा तरूणी गौरी गर्भवती हो जाती है।

गौरी के असहाय, पीड़ित और बोझिल जीवन की करूण कहानी यहीं से प्रारंभ हाती है। जयनाथ के द्वारा किए गए इस कुकृत्य से वह सबसे मुँह छिपाए फिरती है। चमारन के पास अपना गर्भ गिराने वास्ते वह अपने मायके पहुँचती है। किन्तु समाज उसे बहिष्कृत करने के साथ अपने बच्चों से भी दूर कर देता है। मृत्यु की कामना करते हुए गौरी हैजे से पीड़ित होकर मृत्यु का वरण करती है रतिनाथ ही चाची गौरी का अंतिम संस्कार करता है और चाची की अस्थियों को गंगा में प्रवाहित कर देता है। यह उपन्यास दरअसल एक स्तर पर गौरी और रतिनाथ के वत्सल प्रेम की कहानी भी बुनता है। माँ के अभाव में रतिनाथ के बालमन की आकांक्षाओं का गौरी पूरा करती है और बदले में रतिनाथ गौरी के जीवन में एक अवलंब के रूप में सहारा देता है। दोनों का प्रेम एक दूसरे के प्रति समर्पित है। 'रतिनाथ की चाची' नामक उपन्यास में एक ओर जहाँ उपन्यासकार ने मिथिला की आंचलिकता, वैधव्य जीवन की त्रासदियों के बीच माँ के अभाव में जी रहे अभिशप्त रतिनाथ की कहानी कहता है वहीं दूसरी ओर यह उपन्यास यौनिकता के प्रश्नों को और समाज में व्याप्त ब्राह्मणवाद के चरित्र को भी उजागर करता है। नागार्जुन की नायिका गौरी अपने गर्भ–ठहरने से संबंधित सवालों का जवाब देते एक स्थल पर कहती है कि– ''मैं और कुछ नहीं जानती। वह भादो का महीना था। अमावस की रात थी। एक घनी

***सहायक प्रोफेसर (हिन्दी विभाग), सत्यवती कॉलेज (सांध्य) दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।**

और अंधेरी छाया मेरे बिस्तर की तरफ बढ़ आई। उसके बाद क्या हुआ, इस बात का होश अपने को नहीं रहा... ''[2]

इन प्रसंगों के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के बाद यह मालूम करना थोड़ा कठिन हो जाता है कि गौरी और जयनाथ के बीच बने दैहिक संबंधों में गौरी की इच्छा थी या नहीं? गौरी प्रतिकार भी कर सकती थी। अपने साथ हुए इस कृत्य को सामाजिकों के बीच भी ले जा सकती थी, लेकिन वह ऐसा नही करती है। अर्थात् इस बात की भी संभावना दिखलाई पड़ती है, कि गौरी अपनी दैहिक जरूरतों के सामने अपने वैधव्य को खण्डित करती है। इन्हीं प्रसंगों में नागार्जुन ने यौनिकता के कई प्रश्नों को उभार दिया है। जयनाथ पत्नी के मरने के बाद अपनी दैहिक जरूरतों को संतुष्ट करने के लिए कई महिलाओं के साथ रिश्ता रखता है। यहाँ तक कि वह बनारस में मैथिल विधवाओं के आश्रम तक पहुँचता है। वह अपना संबंध शुभंकरपुर का अपने गाँव के विधवा तेलिन से भी बनाता है। बड़हरवा गाँव में अपनी बहन के बहुरानी के प्रेम में भी वह उलझता है। यानि अपनी यौन–संतुष्टि के खातिर अपना पता बदलते रहता है। पुरुषवादी मानसिकता और सामाजिक दोहरेपन या वितंडावाद में पुरुषों का यह चरित्र प्रश्नाकुलता से परे का विषय होता है। एक स्थान पर जयनाथ के चरित्र को रेखांकित करते हुए गौरी कहती है कि– ''क्षुद्र पुरुष के इस धृष्ट परिहास का मुँहतोड़ उत्तर देना अत्यंत आवश्यक समझकर वह बोल पड़ती है 'किसी भी युग में स्त्री को अमृत पीने का सुयोग नहीं मिला। पुरुष को अमृत पिलाकर स्वयं वह विषपान ही करती आई है.... जाने दो, तुम यह सब क्या समझोगे।''[3]

गर्भ ठहरने की घटना के बाद गौरी अपने को जयनाथ से बचाने की भरपूर कोशिश करती है। फिर भी जयनाथ की भूखी आँखें गौरी के जीवन में आग लगाने के लिए आगे बढ़ती है– ''पिछले साल इन्हीं महाशय ने उमानाथ की माँ को क्या कम परेशान किया है। दिन में तो नहीं परन्तु रात को सोना चाची के लिए हराम हो गया था। वह रत्ती को बराबर अपने नजदीक सुलाती, फिर भी जयनाथ नहीं मानते। खा पी चुकने पर कहानियाँ सुनते या गप करते जब रत्ती सो जाता तो किसी न किसी बहाने जयनाथ चाची के पास आ बैठते। वह बेचारी भी संभलकर उठ बैठती।.... जयनाथ का हाथ बहकता तो चाची उसे पकड़कर आहिस्ते हटा देती। वासना के उद्रेक से जयनाथ की जीभ लड़खड़ाने लगती तो वह फुर्ती से उठकर बीच आँगन में आ जाती।''[4]

चंद्रमुखी के साथ जयनाथ के संबंधो। को भी नागार्जुन ने बड़े रोचक ढंग से लिखा है'– ''इस बार भी सुमित्रा की देवरानी ने ही छलबल से जयनाथ को बुलवाया था। प्रेमी या तो अविवाहित हो या फिर विधुर। वैसी स्थिति में प्रेमिका को सहूलियत रहती है। देवरानी का नाम था चंद्रमुखी।''[5] काशी प्रवास के दौरान जयनाथ का संबंध मुसम्मात सुशीला से बनता है। और यही कारण है कि जयनाथ वहाँ महीनों रूक जाते हैं– ''.....सुशीला की यह गुण–गाथा सुनकर जयनाथ ने उसके प्रति और भी आकर्षण अनुभव किया। वह तीसरे चौथे दिन सुशीला के यहाँ पहुँचने लगे।..... एक दिन, रात को वह उन्हें सिनेमा दिखाने ले गई। लेकिन ऐसी अद्‌भुत साथिन तो उन्हें कभी नहीं मिली।''[6] पंचगंगा घाट पर बैठे सुशीला के मुख से नागार्जुन ने मैथिल समाज में व्याप्त वर्जनाओं और स्त्री पुरुष संबंधों के कड़े अनुशासन और सामाजिक पहरेदारी पर बड़े प्रश्न करवाये है। सुशील कहती है– ''बहता पानी ही धार कहलाता है। देखो, सुबह–शाम हजारों आदमी नहाने आते हैं। मगर तुम जिस जाति में, जिस समाज में पैदा हुए हो वह जिंदा नहीं मुर्दा धार है वह छाड़न है। फिर भी मिथिला की मिट्‌टी का मुझे बहुत ही मोह है।''[7]

नागार्जुन ने इन प्रसंगों के जरिए मैथिल ब्राह्मण समाज की कड़ी आलोचना की है। मुर्दा धार से अभिप्राय यह है कि यह समाज अपने आपको समय की धारा से जोड़कर नहीं चलता है। जयनाथ के जरिए नागार्जुन ने पुरुषवाद के चंगुल में फँसे एक आम मर्द की कथा को इस उपन्यास में उकेरा है। नागार्जुन की यह कोशिश रही है कि 'रतिनाथ की चाची' में गौरी के जरिए सामाजिक रूढ़ियाँ, वर्जनाओं और दैहिक पवित्रता की परंपरागत अवधारणा को व्यक्त करे और इस कोशिश में नागार्जुन सफल भी दिखाई पड़ते हैं। इस उपन्यास की सामाजिक परिस्थितियाँ जटिल और संघर्षमय है। विवेच्य उपन्यास में मिथिला के तरकुलवा और शुभंकरपुर को पृष्ठभूमि में रखकर मिथिला की भौगोलिक, सामाजिक व सांस्कृतिक उपलब्धियों और अनुपलब्धियों का रोचक वर्णन हुआ है। ''तरकुलवा में सभी जाति के लोग बसते थे। दुसाध, मुसहर, डोम थे तो धुनिया, जुलाहा भी थे। लेकिन बाभन, राजपूत, बनिया, खाला वगैरह एक ओर थे। मुसलमान दूसरी ओर। लोगों की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है।''[8] मिथिला की कुछ चीजें वैसे भी वहाँ की पहचान है– माछ, पान, मखान और आम। मछली और

आम से नागार्जुन का यह लगाव उनके हर उपन्यासों में कहीं न कहीं दिखाई पड़ता है। ''गाछी अब उजड़ रही थी। लकड़ी के अभाव में बड़े–बड़े गाछ कट रहे थे। डेढ़–डेढ़ सौ वर्ष की उम्र के विशालकाय वृक्षों के आम रत्ती को यहीं मिले थे। रूप और गुण के अनुसार आमों के अलग–अलग नाम होते हैं। वहाँ सौ पेड़ बच रहे थे। केरवा, परोड़िया, बुनक्का, करिअम्मा, धुमनाही, लडुब्बा, केरवी, बेलहा, सिनुरिया, पहुनपदौना, अमतहा, सनहा, चकेलवा, चक्रपाणिभोग....''[9]

गौरी इस उपन्यास में आद्योपांत कष्ट सहती हैं बेटे उमानाथ को जब अपनी माँ के गर्भ ठहरने की कहानी पता चलती है, तब उमानाथ अपनी माँ को पीटता है। ''उमानाथ फुँफकारता हुआ अपने आँगन में आया और माँ का झोंटा पकड़ लिया। वह बेचारी इस आकस्मिक आक्रमण से चकित थी कि इसी बीच लड़के ने उसकी पीठ पर आठ–दस लात गदागद जमा दिए। चाची ऐंचकर रह गई।''[10] जयनाथ और गौरी के बीच बने संबंध सहमति से थे, इस बात का इशारा गौरी एक स्थल पर स्वयं करती है वह कहती है– ''नहीं भैया कोने में कुल्हाड़ी रखा है– उठा लाओ मुझे खंड खंड कर दो। मैं खुद इसीलिए नहीं डूब मरी कि तुम्हारे हाथों सद्गति मिलेगी तो मेरे सारे कुकर्म धुल जायेंगे।''[11] और उपन्यास के उत्तरार्द्ध में गौरी आत्महत्या के तमाम विकल्पों का तलाशते हुए चिंता में डूबी रहती है लेकिन अंततोगत्वा वह सामाजिक लोक–लिहाज और कुल की मर्यादा खातिर ऐसा नहीं करती है। वह हैजा जैसी महामारी के फैलने का इंतजार करती है। ''चाची ने निश्चय किया, पतोहू का मुँह देखकर अपनी जीवनलीला समाप्त कर लेनी चाहिए। फिर वही बात? नहीं वह बात नहीं। जीवनलीला समाप्त करने में पल–भर भी लग सकता है, पहर–भर भी। मास, छह मास, साल भर भी लग सकता है। अलक्षित रूप में अपने को बीमार कर लेना, दवा–दारू नहीं करवाना और लगातार कुपथ्य और असंयत करते चले जाना... इस तरह कोई मरता है तो घरवालों की बदनामी नहीं होती। और यहाँ तो टलती बला को जानकर कोई 'हाय–हाय' नहीं करेगा।''[12] अंतिम समय में जीवनपर्यंत प्रताड़ित होने वाली गौरी प्रगतिशील और विद्रोही बन जाती है। वह पुत्र उमानाथ की धमकी के बावजूद चर्खा से दूरी नहीं बनाती है। वह कहती है कि– ''मन हुआ कि चर्खा तोड़कर फेंक दे मगर नहीं। इसने पिछले पाँच साल से जीवन का साथ दिया है अब उमानाथ के कहने से वह उसको छोड़ बैठेगी? ना ऐसा नहीं हो सकता। उमानाथ चाहे चमारिन कहे या जुलाहिन, चाची चर्खा नहीं छोड़ेगी।''[13] गौरी अब अखबार के जरिए देश–दुनिया की खबर लेती है। अंतरराष्ट्रीय विषयों पर अपना मत प्रकट करती है। लेकिन परंपरवादी सामाजिक मान्यताओं के सामने अपना घुटना टेक देती है। हैजे का दंश झेल रही गौरी की अंतिम इच्छा है कि मरने के बाद रतिनाथ ही उसे मुखाग्नि दे। रतिनाथ के गाँव आने पर वह उसे कहती है– ''थोड़ी देर बाद रत्ती के हाथ को अपने कमजोर हाथ में लेकर कहा था– 'बबुआ कहीं कुछ हो जाए तो इस मुँह में आग तुम्हीं देना, हाँ?''[14]

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस उपन्यास में नागार्जुन गौरी के जरिए मैथिल समाज और संस्कृति के दोहरेपन, अविचार और कुरीतियों को तो सामने लाते हैं लेकिन उससे बाहर निकलने का विकल्प नहीं देते हैं। गौरी अंतिम समय में विद्रोही और प्रगतिशील बनकर भी सामाजिक संरचनाओं में बहुत तब्दीली नहीं कर पाती है। नागार्जुन अपने इस उपन्यास में एक आदर्शवादी मॉडल की ओर बढ़ते हुए भी यथार्थवादी ही बने रहते हैं। गौरी मुक्ति की कामना तो करती है, लेकिन मुक्त नहीं हो पाती है। इस उपन्यास में दैहिक पवित्रता जैसी परंपरागत अवधारणा का कोई विकल्प प्रस्तुत करने में नागार्जुन असफल रहते हैं।

सदर्भ–सूची :–

1. शोभाकांत : नागार्जुन रचनावली, भाग–4, राजकमल प्रकाशन, सं. 2011, पृ. 123।
2. शोभाकांत : नागार्जुन रचनावली, भाग–4, राजकमल प्रकाशन, सं. 2011, पृ. 134।
3. शोभाकांत : नागार्जुन रचनावली, भाग–4, राजकमल प्रकाशन, सं. 2011, पृ. 77।
4. वही, पृ. 77।
5. शोभाकांत : नागार्जुन रचनावली, भाग–4, राजकमल प्रकाशन, सं. 2011, पृ. 98
6. वही, पृ. 101।
7. वही, पृ. 102।
8. शोभाकांत : नागार्जुन रचनावली, भाग–4, राजकमल प्रकाशन, सं. 2011, पृ. 82।
9. वही, पृ. 134।
10. शोभाकांत : नागार्जुन रचनावली, भाग–4, राजकमल प्रकाशन, सं. 2011, पृ. 142।
11. वही, पृ. 114।
12. वही, पृ. 114।
13. शोभाकांत : नागार्जुन रचनावली, भाग–4, राजकमल प्रकाशन, सं. 2011, पृ. 115।
14. वही, पृ. 118।

'पोस्ट बाक्स नं. 203 नाला सोपारा में किन्नर जीवन का यथार्थ चित्रांकन

डॉ. राकेश कुमार*

'पोस्ट बाक्स नं0 203 नाला सोपारा' उपन्यास सन् 2018 साहित्य अकादमी पुरस्कार से पुरस्कृत ख्यातिलब्ध साहित्यकार चित्रा मुद्गल का किन्नर जीवन पर आधारित होने के कारण वर्तमान समय में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय है। असमानता और उत्पीड़न पर आधारित वर्तमान समाज–व्यवस्था में किन्नर को समान अधिकार महत्व एवं प्रतिष्ठा देने का यह उपन्यास एक प्रबल प्रयास है। चित्रा मुद्गल का यह उपन्यास समाज की उस मानसिकता पर प्रश्नचिह्न खड़ा करता है जो सिर्फ एक शारीरिक कमी की वजह से किन्नर को सामाजिक व्यवस्था से बहिष्कृत कर दिया जाता है। अमीर–गरीब का भेद तो क्या उसे मनुष्य की श्रेणी में ही नहीं रखा जाता।

पोस्ट बाक्स नं0 203 नाला सोपारा मानवीय बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुए लिखा गया एक अत्यन्त ही मर्मस्पर्शी उपन्यास है। पत्राचार शैली में यह उपन्याय लिखा गया है जिसमें माता–पुत्र की भावाकुल अवस्था, अन्तर्मनों के अन्तःतहों की अनुभूतियां सब पत्रों के माध्यम से व्यक्त हुई हैं। पत्र के अन्त में सदैव "तेरा दीकरा बिन्नी उर्फ विनोद उर्फ बिमली" अपने आप में काफी कुछ कह जाता है। उर्फ शब्द का प्रयोग यहाँ पर असहज नहीं लगता? यह इस बात का संकेत है कि उर्फ एक अतिरिक्त पहचान भी रखता है। लेकिन उर्फ शब्द का इतना प्रयोग ऐसा भी व्यक्ति करता है जो अपनी एक मुक्म्मल पहचान खोजने के लिए व्याकुल है। निरंतर इस द्वन्द्व से जूझता रहा है कि वो आखिर है कौन? उसकी अपनी क्या पहचान है? उपन्यास का मुख्य पात्र विनोद उर्फ बिन्नी उर्फ बिमली अपने परिवार से भगा दिये जाने के बाद समाज की संवेदनहीनता एवं झण्डाबदारों द्वारा किये जाने वाले शारीरिक और मानसिक प्रताड़ना को अपनी माँ को लिखे गये पत्रों में व्यक्त करता है। अपनी प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करते समय विनोद अपने सहपाठियों से किसी मामले में कम नहीं है, चाहे वह खेलकूद हो, पढ़ाई–लिखाई हो, वह सब में प्रथम स्थान प्राप्त करता है, सभी आयोजनों में वह बढ़–चढ़कर हिस्सा लेता है। घर के सभी सदस्यों से वह अपना–स्नेह रखता है, वह अपनी माँ बिमला बेन शाह, मोटा भाई सिद्धार्थ, पिता और छोटा भाई मंजुल सभी से। स्वस्थ मानव होने के कारण भी परिवार और समाज द्वारा उसे क्यूँ बहिष्कृत कर दिया गया इसका कारण उसे समझ में नहीं आता। विनोद कहता है कि, "जननांग विकलांगता बहुत बड़ा दोष है लेकिन इतना बड़ा भी नहीं कि तुम मान लो कि तुम धड़ का मात्र वही निचला हिस्सा भर हो। मस्तिष्क नहीं हो, दिल नहीं हो, धड़कन नहीं हो, आँख नहीं हो, तुम्हारे हाथ–पैर नहीं हैं। हैं, हैं, हैं, सब वैसा ही है, जैसे औरों के हैं। यौन–सुख लेने–देने से वंचित हो तुम, वात्सल्य सुख से नहीं! सोचो। बच्चे तुम पैदा नहीं कर सकते मगर पिता नहीं बन सकते, यह किसने नहीं समझने दिया तुम्हें?''[1]

जननांग विकलांगता को सर्वोपरि मान लेने वाले भारतीय समाज व्यवस्था में विनोद उर्फ बिन्नी का यह कथन समाज के दोहरे चरित्र को उजागर करता है। हमारे समाज में सभी तरह की दिव्यांगता स्वीकार्य है जैसे श्रवणबाधित, दृष्टिबाधित, पैर से विकलांग होना लेकिन जननांग विकलांगता को शारीरिक अक्षमता की श्रेणी में नहीं रखा जाता। यह हमारे समाज का दोमुहापन है, विनोद जैसे समाज के अन्य लोगों की मात्र इतनी शारीरिक अक्षमता पूरे उनके वजूद पर ही प्रश्नचिह्न खड़ा करती है। विनोद शिक्षा के महत्व को भली–भाँति जानता है इसीलिए वह अपनी शिक्षा अनवरत जारी रखता है। शिक्षा के माध्यम से ही हम जैसों के जीवन में उजाला आ सकता है, विनोद जीविकोपार्जन हेतु किन्नरों के परम्परागत पेशा से सदैव दूर रहकर अन्य कार्यों जैसे गाड़ियों की साफ–सफाई, कम्प्यूटर सीखकर विधायक जी के यहाँ काम करना इत्यादि के द्वारा अपनी जीविका चलाता है। अपने सहयोगियों को भी शारीरिक श्रम के महत्व को समझाता है कि "कुली बनिए। मिस्त्री बनिए, ईट–गारा ढोकर, जो चाहे सो कीजिए, पायेंगे मेहनत के कौर की तृप्ति।''[2] इस तरह इसके माध्यम से भी आत्मसम्मानपूर्ण

***असि0 प्रोफेसर, एस0एस0वी0 पी0जी0 कॉलिज, हापुड़।**

जीवन जिया जा सकता है। वह लोगों से सभ्य भाषा में वार्तालाप करने की सलाह देता है, जिससे समाज की विचारधारा को बदलने में मदद मिलेगी। उसकी सलाह मानकर पूनम श्रम के द्वारा अपना जीवनयापन करने का निश्चय करती है।

परिवार और समाज द्वारा किया गया परित्याग इन्हें पथभ्रष्ट करने में कोई कसर नहीं छोड़ता। और वैसे भी एक ऐसा व्यक्ति जिसके बारे में समाज को कोई चिन्ता नहीं, वह समाज की चिन्ता क्यों करें? यही वजह से वह आसामाजिक तत्वों के हाथ की कठपुतली बन कर आपराधिक कृत्यों को करने लगते हैं। उसकी माँ पत्र में लिखती है कि, "मेरे बच्चे! तुझे दुःख है न कि मैंने तेरे पप्पा ने तुझे उस नरक में क्यों ढकेल दिया, इसके बावजूद? जबकि, मेरी मुट्ठी में पूरी ताकत से जकड़ी हुई तेरी बिलखती हुई मुट्ठी को, जो मुझसे अलग न होने के लिए हाथ–पांव पटकती गिड़गिड़ा रही थी, मैंने ही तो उसे धोखा दिया था। अपनी मुट्ठी को शिथिल कर.... मेरी पकड़ तेरी मुट्ठी पर ढीली होते ही तेरे मोटा भाई ने तुझे अपने बाजुओं में दबोच फौरन तुझे चंपाबाई के हवाले कर दिया था।''[3] अगर इस समुदाय के लोग परम्परागत बनी अवधारणा को तोड़कर स्वयं को बदलने चाहते हैं तो उन्हें समाज के लोग बदलने नहीं देते। जैसे पूनम जो विधायक की कोठी पर नृत्य के उपरांत अपने कपड़े बदल रही होती है तो विधायक का भतीजा बिल्लू और उसके मित्र सामूहिक बलात्कार करते हैं, समाज के रसूखदार व्यक्ति होने के कारण पुलिस कोई कानूनी कार्यवाही नहीं करती, बल्कि इस पाशविक प्रकरण को बच्चों की एक गलती मानकर दबा दिया जाता है।

किन्नर समुदाय के द्वारा बनाये गये भय के कारण कई परिवार ऐसे जो बच्चों को अपने साथ रखकर सामान्य जीवन देना चाहते हैं, उन्हें भय के कारण सौंप देते हैं। सिर्फ अपने समाज की संख्या बल में वृद्धि के स्वार्थ के कारण एक सम्भावित अच्छे जीवन को नरक बना देना, किसी भी रूप में उचित नहीं लगता। जब तक यह समुदाय अपने जैसे को उनके परिवार से अलग करने की अपनी इस हठधार्मिता को छोड़कर, स्वयं उन्हें समाज के मध्य जीने के लिए प्रोत्साहित नहीं करता, तब तक उनकी परिस्थिति में सुधार आना असम्भव है। "कल्पित किन्नर जीवन की भावाकुल त्रासदी" नामक लेख में सत्यदेव त्रिपाठी लिखते हैं कि "उपन्यास का विषय किन्नर जीवन जरूर है, पर इसका केन्द्रीय कथ्य इस जीवन का वह पक्ष है, जिसमें नर–मादा के अलावा हुए अपने समलिंगी बच्चे को किन्नर–जमात के लोग घर से जबरदस्ती उठा ले जाते हैं, इसी से आकुल–व्याकुल त्रास उपजा है। कथा के उरोज–स्तर पर जब किसी नेता द्वारा वोट हथियाने के लिए किन्नर–सभा होती है और पढ़े–लिखे होने के कारण विनोद को मुख्य वक्ता की हैसियत से बोलने का मौका मिलता है।''[4] तब विनोद मंच से कहता है कि– "बरजिए बिरादरी को। शपथ लीजिए यहाँ से लौटकर आप किसी लिंगदोषी नवजात बच्चे–बच्ची को, किशोर–किशोरी को, युवक–युवती को जबरन उसके माता–पिता से अलग करने का पाप नहीं करेंगे। उससे उसका घर नहीं छीनेंगे। उपहासों के लात–घूसों से उसे जलील होने की विवशता नहीं सौपेंगे।''[5] विनोद उर्फ बिन्नी उर्फ विमली अपनी माँ से पत्र में कहता है कि "कन्याभ्रूण हत्या के दोषी माता–पिता अपराधी हैं। उससे कम दण्डनीय अपराध नहीं जननांग दोषी बच्चों का त्याग करने वाले माता–पिता।''[6]

विनोद को भी राजनीति के शतरंज का मोहरा बनाया जाता है, प्रायोजित साजिश के तहत विधायक जी अपने यहाँ कम्प्यूटर की नौकरी देकर विनोद के किन्नर होने का भरपूर फायदा चुनावों में उठाना चाहते हैं वह इसके तहत चण्डीगढ़ में किन्नर–सभा का आयोजन करवाते हैं ताकि विनोद के माध्यम से सारे किन्नर आगामी चुनाव में विधायक जी की पार्टी का ही समर्थन करें। लेकिन विनोद मंच का उपयोग वोट की राजनीति के लिए नहीं होने देता बल्कि मंच के माध्यम से सभी किन्नरों की मनोदशा बदलना चाहता है वह कहता है कि "मैं सरकार से अपील करता हूँ कि इस सभागार में, लिंग दोषी बिरादरी की घर वापसी को वह सुनिश्चित करें। कानून बनाए। बाध्य करे अभिभावकों को। घर से बहिष्कृत बच्चों को वह जिस भी उम्र के पड़ाव में हों, अपने साथ रखें। प्रचार करे, अखबारों, चैनलों और आकाशवाणी पर विज्ञापनों के माध्यम से। उनकी चेतना को झकझोरें, ताकि भविष्य में कोई माता–पिता लोकापवाद के भय से लिंगदोषी औलाद को दर–दर की ठोकरें खाने के लिए घूरे पर न फेंके।''[7]

किन्नरों को सम्बोधित करते हुए विनोद उनकी यथार्थ स्थिति का पूरा चित्रांकन इन शब्दों में करता है कि "वो, जो आपको इन्सान नहीं समझते। आपके जीने–मरने से उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ता। अन्धेरे के बावजूद वो आपकी मैयत को कन्धा देने नहीं पहुँचते। आँसू नहीं बहाते। रुढ़ि नियति की है। जीवित रहते धिक्कार की

चप्पलों से वे आपको पीटेंगे। मरणोपरांत वे आपको अपनी ही बिरादरी से पिटवाएंगे। जिनके नवजात शिशुओं को ढूंढ–ढ़ांढ नाच–गाने आशीषने पहुँचते हैं, आप उन्हीं के घर दूसरे रोज पहुँचकर देखिए? घर का दरवाजा आपके मुँह पर भेड़ दिया जाएगा।''[8] समाचार–पत्रों द्वारा आयोजित किये गये प्रेस–कांफ्रेंस में विनोद सरकार से यह मांग करता है कि "जहाँ सरकार ने अनुसूचित जनजाति को रखा है। पिछड़ा वर्ग को रखा है। विकलांग को रखा है और बहुतों को रखा है। 'यह सब समाज के घोर वंचित वर्ग हैं। लिंग दोषी नहीं। बाकायदा स्त्री–पुरुष हैं। 'लिंग दोषी सभी लिंग से स्त्री–पुरुष नहीं हैं तो क्या मनुष्य नहीं है?..... किन्नर बिरादरी का संघर्ष उन्हें मनुष्य माने जाने का संघर्ष है। फिर O (others) में उन्हें क्यों ढकेला जा रहा है। O (अदर्स) को खत्म कर देना चाहिए सरकार को। अपना लिंग उन्हें चुनने की स्वतंत्रता दीजिए।..... उन्हें अलग से इस रूप में चिन्हित करना घोर अमानवीय कृत्य है। किन्नर चाहे जिस भी वर्ग की संतान हों, चाहें जिस जाति–बिरादरी, समुदाय से संबंधित हों, उसी जाति–वर्ग के अनुसार उन्हें अपना सामान्य जीवन जीने की सुविधा मिलनी चाहिए।''[9]

विधायक जी के मंसूबे पूरे न होने के कारण विनोद की हत्या हो जाती है क्योंकि जिस उद्देश्य से विनोद को मोहरा बनाकर किन्नरों से वोट का समर्थन मिलने की आशा थी वह धूल–धूसरित हो गयी। वही दूसरी तरफ एक माफीनामा छपता है जिसमें स्वर्गवासी माँ अपने बेटे से घर वापसी की अपील करती है कि "मंझले बेटे विनोद शाह, जिसे लिंग दोष के चलते बरसों पहले हमने जबरन किन्नर चंपाबाई को सौंपकर दुर्घटना में उसकी मृत्यु होने का नाटक रचा था, लोकापवाद के भय से, उस भूल का परिष्करण करना चाहती हूँ।..... वह अपनी बा की इस अक्षम्य भूल को क्षमा कर दे और वापस अपने घर लौट आए।..... वह दुनिया की सबसे बड़ी सम्पत्ति की मालकिन होती है। उसकी सम्पत्ति होती है उसकी सन्तानें।"..... मैं यह चाहती हूँ कि मेरा माफीनामा वह स्वयं पढ़े। मुझे क्षमा कर दे। मुखाग्नि देने के लिए शीघ्र से शीघ्र वह अपने घर नाला सोपारा पहुँचे।''[10] 'किन्नरों के दुख–दर्द को बयान करता उपन्यास' शीर्षक से अपनी समीक्षा में प्रख्यात कथाकार ममता कालिया ने लिखा है कि "नाला सोपारा मैं थोड़ा परहेज से शुरु करती हूँ। कहीं इसमें भी स्त्री–विमर्श के बासी उबाऊ मुद्दे न हों, जो अर्थहीन, अंतहीन बहसों से दम तोड़ चुके हो। नहीं बिल्कुल नहीं। नाला सोपारा नितांत नई कथावस्तु प्रस्तुत करता नये शिल्प का उपन्यास है। हम लेखकों ने हिजड़ा समुदाय पर यदा–कदा लिखा है। इन पर फिल्में भी कभी–कभार बनी है, किन्तु उनकी पीड़ा, परेशानी और प्रत्याशाओं को उठाने का तार्किक प्रयत्न नहीं किया गया है। प्रस्तुत उपन्यास में लिंगदोषी समाज की समस्या को अत्यन्त मानवीय दृष्टि से उठाया गया है।''[11]

इसी तरह सत्यदेव त्रिपाठी ने 'पोस्ट बाक्स नं0 203 नाला सोपारा' की समीक्षा करते हुए कहा है कि, "उपन्यास में एक सर्जक की कल्पना से सृजित गहन भावात्मक द्वन्द्व व गहरे मानवीय दंश हैं, जो साहित्य की अक्षय निधियाँ है किन्तु किन्नर जीवन का ज्वलंत सच एक दस्तावेज है।''[12] अन्ततः कहा जा सकता है कि अप्रतिम कथाकार चित्रा मुद्गल का यह उपन्यास किन्नर जीवन का यथार्थ चित्रांकन करता है।

सन्दर्भ सूची :–

1. पोस्ट बॉक्स नं0 203 नाला सोपारा : चित्रा मुद्गल, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण 2018, पृष्ठ सं0–50।
2. वही, पृष्ठ सं0–187।
3. वही, पृष्ठ सं0–22।
4. कल्पित किन्नर जीवन की भावाकुल त्रासदी : सत्यदेव त्रिपाठी, समालोचन, 13 मार्च, 2019।
5. पोस्ट बॉक्स नं0 203 नाला सोपारा : चित्रा मुद्गल, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण 2018, पृष्ठ सं0–186।
6. वही, पृष्ठ सं0–178।
7. वही, पृष्ठ सं0–186।
8. वही, पृष्ठ सं0–186–87।
9. वही, पृष्ठ सं0–195।
10. वही, पृष्ठ सं0–223।
11. किन्नरों के दुख–दर्द को बयान करता उपन्यास : ममता कालिया, नवभारत टाइम्स, 27 सितम्बर 2016।
12. कल्पित किन्नर जीवन की भावाकुल त्रासदी : सत्यदेव त्रिपाठी, समालोचन, 13 मार्च, 2019।

'राजस्थान की लोक संस्कृति एवं लोक कला'

जालमसिंह जे. राजपुरोहित*

भारतीय संस्कृति अपनी निरंतरता और समृद्धि के लिए पूरे विश्व में जानी जाती है। उसी तरह राजस्थान की संस्कृति और कला विश्व पटल पर विख्यात है। राजस्थान राजा–रजवाडों का क्षेत्र रहा है, जिसमें विभिन्न संस्कृति एवं अनेक कलाओं का विकास हुआ, जो आज भी यहाँ की असीम धरोहर है। राजस्थान राज्य में विविध विभिन्नताएं हैं। यहाँ के निवासी अनेक प्रकार के लोक नृत्य, गीत, खेल, नाटक का मंचन करते हैं। जिससे दूर दराज़ से आए पर्यटक सम्मोहित हो जाते हैं। यहाँ का कालबेलिया नृत्य, ऊंट की सवारी आदि लोगों को आकर्षित करती हैं। देश–विदेश से आये पर्यटकों की मेहमान नवाजी और भोजन में पारंपरिक पकवानों का चटका वे जीवन भर नहीं भूल पाते। इसलिए पर्यटक चाव से यहाँ आना पसंद करते हैं।

राजस्थान की संस्कृति :– राजस्थान की संस्कृति की बात पहले हो चुकी है,यहाँ हम उन बिंदुओं की ओर ध्यान देंगे जिनसे संस्कृति का स्वरूप उजागर हो सके। राजस्थान की लोक संस्कृति में राजस्थानी परिधान, राजस्थानी पारंपरिक आभूषण, लोकनृत्य, लोकगीत, पकवान, त्यौहार, मेले, आदि की विशेष चर्चा हम करेंगे।

राजस्थानी परिधान एवं वेशभूषा :– राजस्थान को नखरालों राजस्थान भी कहा जाता है। यहाँ के निवासियों में विभिन्न प्रकार की वेशभूषा पहनने का रिवाज है। उसमें रंग–बिरंगी पोशाकें, पचरंगी चुनरी, कुर्ती–लहंगा, रजवाड़ी सूट, लहरिया, ओढ़णी आदि। पुरुष पचरंगी–पगड़ी, धोती–कुर्ता, रंग–रंगीले वेश से सजे–धजे रहते हैं। राजस्थान की वेशभूषा में लोक परंपरा का स्पर्श देखा जा सकता है। विभिन्न जातियों के विविध वेश होते हैं, पहनावा एवं ओढावा से जाति पहचानी जाती है। यह परंपरा राजस्थान में प्राचीन काल से चली आ रही है।

राजस्थानी पारम्परिक आभूषण :– बिना आभूषण शृंगार अधूरा है, उसी तरह राजस्थान में स्त्री और पुरुष के बहुविधि शृंगाराभूषण हैं। स्त्री के शृंगार प्रसाधन में– "चूड़ारत्न, मुकुट, बोर, रखड़ी, टिक्का, मेंमंद, कुंडल, कर्णफूल, झेला–झूमर, लटकन, सुरलिया, नथ, वाली, चूनी, नवसरहार, कंठी, तुलसी, हालरो, हाँसली, चंद्रहार, कंठमाला, चंपकली, झालर, आड़, चौकी, कड़ा, गोखरू, बंगड़ी, गजरा, चूड़ी, बाजूबंद, अणत, बीन्टी, मुदड़ी, दामणा, हथपान, आरसी, कंदोरा–कर्धनी, तागड़ी, कणकती, सटका, पिंजणिया, पायल, नूपुर, घुंघरू, झांझर, आंवला; उसी तरह पुरुषों में तुर्रा, कलंगी, रतनपेच, डोरा, कड़ा, गुड्डा,मुरकी, जेलर, कुंडल, लूंगा, चैन, अंगूठी आदि मुख्य हैं।"[1] स्त्रियों की तुलना में पुरुषों के आभूषण बहुत कम हैं। इन आभूषणों ने परम्परा को जीवित रखा है; और लोग बड़े आदर भाव से आभूषणों को पहन कर शृंगार करते हैं।

राजस्थानी लोक नृत्य एवं लोकगीत :– राजस्थान के लोकनृत्य और लोकगीत विरासत की देन हैं, जो परंपरा के प्रवाह में बहते आ रहे हैं। लोगों ने उन्हें अब तक संजो कर रखा है।

घूमर :– नृत्यों में घूमर राजस्थान का राज्य नृत्य है। यह नृत्य मांगलिक अवसरों एवं पर्वों पर स्त्रियों एवं पुरुषों द्वारा गाया एवं नाचा जाता है। लहंगे की घूम से घूमर नाम पड़ा इसके वाद्ययंत्र, ढोल, नगाड़ा और शहनाई आदि हैं। गीतः– "म्हारी घूमर छे नखराळी ऐ मां,
घूमर रमवा जावा दे।
म्हाने राठौडां री बोली प्यारी लागे ए मां,घूमर३।"[2]

चंग :– इस नृत्य को होली रोपनी से लेकर सीतला सप्तमी तक नाचा एवं गाया जाता है। यह नृत्य मूल पुरुषों का नृत्य है। इस में गीत गाते हुए नाचा जाता है। नृत्य के लिए चौड़ा आँगन या चामटा में पुरुष नई उमंग, मौज–मस्ती के साथ नृत्य करते हैं। इसके वाद्ययंत्र का नाम भी चंग ही है। गीत–

***हिन्दी–विभाग, सरदार पटेल विश्वविद्यालय, वल्लभ विद्यानगर, आणंद (गुजरात)।**

"चंग धीरो रे बजावण वाला अमर रहिजो रे, के चंग धीरो रे,
हा रे चंग धीरो रे या रंग रंगीली होली आयी रे, के चंग धीरो रे,
हा रे चंग धीरो रे बजावण वाला अमर रहिजो रे, के चंग धीरो रे।"[3]

कालबेलिया :– यह राजस्थान की कालबेलिया जाति की मुख्य नृत्य शैली है। इसमें कालबेलिया जाति की स्त्रियां नागिन की लचक और उसकी गति के समान नृत्य करती हैं। नृत्य करने से पहले नृत्यांगना कांच के टुकड़ों से सजी जरी–गोटा से तैयार काले रंग की कुर्ती, लहंगा और चुनरी पहकर अपनी कला प्रस्तुत करती है। यह नृत्य आज भी विश्व विख्यात है। इसका वाद्ययंत्र पुंगी है। गीत–

"रे काल्यो कूद पड्यो मेले में, साईकल पंचर कर ल्यायों,
दो दिन ढब जा रे डोकरिया, छोरी म्हारी बाजारियों काढ़े।"[4]

गेर :– यह होली के अवसर पर सम्पूर्ण राजस्थान में किया जाता है। इसका वाद्ययंत्र ढोल और थाली होती है। इसकी शुरुआत पहले धीरे–धीरे, बाद में इसकी गति को बढ़ाया जाता है। जैसे–जैसे बाजे की धुन में गति आती है, उसी तरह गेर नाच रहे पुरुष के नृत्य में गति और धमक बढ़ती जाती है। यह देखने–सुनने में बहुत ही मनोरम और आनंददायक होता है। गीत–

"खेत में उबोडी छोरी,ऊँचो हाथ करियो रे
ऐ ऊँचो हाथ कर ने,वा तो जालो दिनों रे
के महीनों फागण रो,के महीनों फागण रो।"[5]

राजस्थान में अनेक लोकनृत्य हैं, विषय विस्तार से बचने के लिए यहाँ उनका उल्लेख मात्र किया जा रहा है– इनमें लूर, घुड़ला, बमरसिया, जालौर का ढोल,उदयपुर की भवाई, डांडिया, कठपुतली, कच्छी घोड़ी, पनिहारी गीत, तेरहताली आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

लोकगीत :– राजस्थान में प्राचीनकाल से ही लोकगीतों का विशेष स्थान रहा है। अनेक गीत आज भी लोग मुख–जुबानी गुनगुनाते हैं। राजस्थानी लोकगीतों में स्थानीय रंगत बहुत गाढ़ी है।

गोरबंद :– ऊंट के गले के आभूषण को गोरबंध कहा जाता है। यह गीत गणगौर के पर्व पर गाया जाता है, विशेषकर मरुस्थली एवं शेखावटी क्षेत्र में प्रसिद्ध है। गीत–

"ओ लडली लुमा झूमा ये म्हारों गोरबंद नखरालो।
आलीजा म्हारों गोरबंद नखरालो।"[6]

गणगौर :– गणगौर के पर्व पर गाये जाने वाले अनेक गीत इस पर्व को विश्व स्तर पर विख्यात बनाते हैं। गीत–

"म्हारा हंज्या मारू याई रेवो जी
म्हारी लाल नणद रा वीर,
म्हाने कूण खेलावे गणगोर ?।"[7]

बन्ना–बन्नी गीत :– विवाह के अवसर पर वर एवं वधू के लिए गीत गाये जाते हैं, जिसमें अनेक गीत होते हैं, गीतों में भी विविध रस्म और रीति–रिवाज होते हैं। गीत–

"बन्ना रे बागां में झुला डाल्या
थोरी बन्नी ने
थोरी लाडी ने,झूलण दीज्यो
बन्ना छेल गजरा
थोरी लाडी ने हिंडण दीज्यो बन्ना छेल गजरा।"[8]

लूर :– लूर गीत होली रोपनी से आरम्भ हो जाते हैं, जिसमें गाँव की लड़कियां और महिलाएं ये गीत गाती हैं। गीत–

"टिक्की ऊपर टिकी देने गेर जोवा गी थी रे
सामे मिळया गेरिया ऊँचाळे पटकी रे

के टूटो तेडियो
हा रे टूटो तेडियो,साथणियों मारा मोती चुगल्यों रे
के टूटो तेडियो वावा टूटो तेडियो।"[9]

मूमल :– श्रृंगार एवं प्रेम का यह गीत मूमल राजकुमारी के लिए प्रसिद्ध है,जो जैसलमेर(लोद्रवा) की राजकुमारी थी। गीत–

"ओ री आँख मूमल री मद रा प्यालिया
प्यारी प्यारी मूमल
लुध्रवे री मूमल
हाथे ले जावो अमराणे वाले देश।"[10]

ओल्यू :– ये गीत विवाह के पश्चात बेटी की विदाई के समय गाया जाता है, जिसे करुण विदाई गीत भी कहा जाता है। गीत–

"ए आम्बा पाकाँ ए पाकी आंबळी
ए रमती सातणियों रे संग
गायलमल रे चाल्यो।"[11]

मोरिया :– यह एक विरहगीत है। गीत–

"मोरिया पीहू पीहू की वाणी छोड़ दे
पीव जी बसे परदेस मोरिया
पीहू की वाणी छोड़ दे
डावडी पीहू पीहू की वाणी बोल स्यूं।"[12]

मरसिया :– कुछ जातियों में इस गीत को मृत्योपरांत विलाप के रूप में गाया जाता है, इसलिए ये जाति विशेष का गीत है। गीत–

"कठै सूं आई बडेरा थाने पाळकी कठै सूं आया रे वीमाण
जी ओ बड़भागण आयौ हलकारौ श्री भगवान रौ राजा राम रौ।[13]

रसिया :– यह होली के अवसर पर फाल्गुन के महीने में गाया जाता है, जिसमें प्रेम–मस्ती एवं कुछ गाली गीत भी गाए जाते हैं। गीत–

"चांदा तो थारे चानण रसिया
पान्यो गई जी तळाव रसिया
फागण में तो फागणियों रंगावों रसिया।"[14]

राजस्थान के पारम्परिक पकवान :– राजस्थान प्रदेश में विशेषरूप से शाकाहारी खाना खाया जाता है, जो चटाकेदार एवं स्वास्थ्यप्रद होने के कारण प्रसिद्ध है। पारम्परिक पकवानों की बात करें तो दाल–बाटी, चूरमा और पंचकूटा की सब्जी मुख्य हैं। इसी के साथ बाजरे की रोटी, बूंदी का रायता, हरी मिर्च का कुट्टा, गट्टे की सब्जी, घी–गुड़, लीली हल्दी की सब्जी, बीकानेरी रसगुल्ले, भुजिया, सिरा, लापसी, बालूशाही, इमरती, घेवर, प्याज की कचौड़ी, मिर्ची बड़ा, दूध का मावा इत्यादि विशेष व्यंजनों के लिए राजस्थान का संपूर्ण क्षेत्र जाना जाता है।

राजस्थान के त्योहार :– राजस्थान में अनेक त्यौहार मनाये जाते हैं। यहाँ के प्रमुख त्योहारों के नाम माह के अनुसार निम्नलिखित हैं–

चैत्र माह :– (शुक्ल प्रतिपदा दृ हिन्दू नववर्ष,बसंतीय नवरात्रा), (शुक्ल अष्टमी – दुर्गाष्टमी), (शुक्ल नवमी – रामनवमी)

वैशाख माह :– (शुक्ल तृतीया – अक्षय तृतीया,आखातीज,परशुराम जयंती)

ज्येष्ठ माह :– (शुक्ल एकादशी – निर्जला एकादशी)

आषाढ़ माह :– (शुक्ल एकादशी – देव शयन एकादशी), (शुक्ल पूर्णिमा – गुरु पूर्णिमा)

श्रावण माह :– (कृष्ण पंचमी – नाग पंचमी), (कृष्ण त्रयोदशी – शिवरात्रि),(कृष्ण पूर्णिमा – रक्षाबंधन)

भाद्रपद माह :– (कृष्ण तृतीया – कजली, सातुड़ी, भादुड़ी तीज), (कृष्ण अष्ठमी – कृष्ण जन्माष्टमी), (कृष्ण नवमी – गोगानवमी), (शुक्ल द्वितीया – रामदेव जयंती), (शुक्ल चतुर्थी– गणेश चतुर्थी)

अश्विन माह :– (शुक्ल प्रतिपदा – शारदिय नवरात्रि), (शुक्ल दशमी – विजय दशमी, दशहरा)

कार्तिक माह :– (कृष्ण चतुर्थी – करवा चौथ), (कृष्ण त्रयोदशी – धन तेरस, ध्वन्तरी जयंती), (कार्तिक अमावस्या – दीपावली, लक्ष्मी पूजा, (शुक्ल अमावस्या – भैया दूज)

माघ माह :– (पंचमी – बसंत पंचमी)

फाल्गुन माह :– (कृष्ण त्रयोदशी – महाशिवरात्रि), (पूर्णिमा – होलिका दहन)

मुस्लिम त्योहार :– मुहर्रम, ईद–उल–मिलाद–उल–नबी, ईद–उल–फितर(मीठी ईद), ईद–उल–जूहा (बकरीद)

जैन त्योहार :– दसलक्षण पर्व, पर्युषण पर्व, रोट तीज, महावीर जयंती, ऋषभ देव जयंती

सिक्ख त्योहार :– वैशाखी, लोहड़ी, गुरुनानक जयंती, गुरु गोविंद सिंह जयंती

ईसाई त्योहार :– क्रिसमस, गुड फ्राइडे

सिंधियों के त्योहार :– चालीसा महोत्सव

राजस्थान के मेले :– राजस्थान में मेलों का विशेष महत्व रहा है। सभी मेले धूमधाम से आयोजित किये जाते हैं और विशेष निगरानी में पूर्ण किये जाते हैं, जिसमें किसी के जान–माल की हानि न हो। प्रमुख मेलों का विवरण इस प्रकार है– श्री बलदेव पशु मेला (मेड़ता सिटी नागौर), बेणेश्वर धाम मेला (डूंगरपुर), गौर का मेला (सिरोही), भूरिया बाबा मेला (अरणोद–प्रतापगढ़), पुष्कर मेला (पुष्कर–अजमेर), कपिलमुनि का मेला (कोलायत–बीकानेर), रामदेव मेला (रामदेवरा–जैसलमेर), कजली तीज मेला (बूंदी), वृक्ष मेला (खेजड़ली–जोधपुर), गणगौर मेला (जयपुर), राणी सती का मेला (झुंझुनूं), खेतला जी का मेला (पाली), तेजाजी– का मेला (परबत सर), ऊंट मेला (बीकानेर), थार महोत्सव (बाड़मेर) आदि ऐसे अनेक मेले राजस्थान के गाँव–गाँव में मनाये जाते हैं।

राजस्थान की लोक कला :– भारतवर्ष की समस्त लोक–कलाओं में राजस्थान की लोक कला का अद्वितीय स्थान है।राजस्थानी लोक कलाओं में फड़, चित्रांकन, काष्ट कला, माण्डणा, देवरा, पथवारी, सांझी, पिछवाई, पावे, भराड़ी, हीडू, वील, मेहंदी महावर, बतेवड़े, चिकोरा, मोठा, गोदना आदि मुख्य है। इनमें से कुछ का परिचय दिया जा रहा है।

फड़ चित्रांकन :– इस कला में लोक देवी–देवताओं का कपड़े पर चित्र अंकन करते हैं, जिसमें नायक लाल रंग में तथा खलनायक हरे रंग में प्रदर्शित किया जाता है। फड़ को बाँचने वाले को 'भोपा' कहा जाता है। इस तरह राजस्थान में अनेक फड़ प्रचलित है, जिसमें पाबूजी, देवनारायण जी, रामदेव जी, रामदला, कृष्णदला, भौसासुर और अमिताभ आदि प्रमुख हैं।

काष्ट कला :– यह कला लकड़ी से जुड़ी कला है जिसमें काश्तकार नवीन आकृतियां बनाता है। इनमें मुख्य कठपुतलियां, बेबाण, चैपड़ा, कावड़, तौरण, बाजौट, खाण्डा आदि हैं।

कठपुतली :– इसका निर्माण उदयपुर में हुआ था। कठपुलतली का मंचन नट अथवा भाट जाति के लोग करते हैं।

चैपड़ा :– मसाला रखने का षष्टकोन का डब्बा बनाया जाता है– जिसमे छः खानों में अलग–अलग मसाले भरे जाते है, जिसे समक एवं हटड़ी कहा जाता है।

तोरण :– विवाह के अवसर पर दुल्हन के घर प्रवेश द्वार पर तौरण बाँधा जाता है, जिसकी बनावट मोर की आकृति की तरह होता है। दूल्हा तलवार और छड़ी से, घोड़े या ऊँट पर बैठ कर तोरण की वंदना कर चंवरी में प्रवेश करता है।

बाजोट :– इसे लकड़ी की चौकी भी कहा जाता है। यह भोजन रखने में उपयोगी है। देवी–देवताओं की पूजा अर्चना करने के लिए चौक भरा जाता है। वर–वधू को बिठाने के लिए भी इसका उपयोग किया जाता है।

खाण्डा :– यह लकड़ी का तलवारनुमा आकृति में बना होता है, जिसका उपयोग रामलीला में तलवार के स्थान पर किया जाता है। होली के अवसर पर वणाग(सुथार) गाँवों में जिनके यहाँ लड़का जन्मा है, वहाँ खाण्डा बाँटता है और छोटे बच्चे की शादी होली दहन के दिन होली से करवाई जाती है, तब खाण्डा उनके हाथ में रखा जाता है। इसे गुलाबी रंग में रंगा जाता है। ये शौर्य का प्रतीक होता है, वर एवं वधू के घर भी खाण्डा भेजने की परम्परा रही है।

गोदना :– गोदना गरासिया जाति की मुख्य परम्परा रही है, जिसमें सुई अथवा बबूल के पेड़ के कांटे से शरीर पर विभिन्न आकृतियां उकेरी जाती हैं। घाव में कोयला और खेजड़ी की हरी पत्ती का चूरा भर दिया जाता है, घाव भरने के बाद उसका हरा रंग उकर आता है।

राजस्थान में अनेक समुदाय हैं और उनकी की अलग–अलग संस्कृति है एवं उनकी निजी कलाएँ है। ये विभिन्न कलाएँ राजस्थान को विश्वपटल पर पहचान दिलाती हैं; और भारत को भी गौरवान्वित करती हैं। अपनी विशेष संस्कृति एवं कलाओं के कारण विश्व भर के पर्यटक राजस्थान भ्रमण हेतु आते हैं; और राजस्थान की लोक संस्कृति एवं लोक कलाओं में रंग जाते हैं।

संदर्भ–ग्रन्थ :–

1. राजस्थान का सामान्य अध्ययन, एच. डी. सिंह,चित्रा राव, पृ. स. 187।
2. राजस्थानी लोकगीत, डॉ.पुरूषोत्तम लाल मेनारिया, पृ. स. 40।
3. बटाऊ एलबम, गायक सीमा मिश्रा।
4. वीणा संगीत, गायक सीमा मिश्रा।
5. पाली जिले के गांवों में प्रचलित गीत।
6. मारवाड़ी सांग्स इन. इंटरनेट से प्राप्त गीत।
7. राजस्थानी लोकगीत, डॉ. पुरूषोत्तम लाल मेनारिया, पृ. स. 40।
8. सावन के माह में गाँव की स्त्रियों द्वारा गाया गीत।
9. लूर गीत– गांवों में लड़कियां और महिलाओं द्वारा गाया गीत।
10. गायक धापू खान, इंटरनेट से प्राप्त।
11. विदाई गीत– शादी के समय विदाई रस्म पर सामूहिक रूप से स्त्रियों द्वारा गाया गीत।
12. राजस्थानी फॉल्कसोंग लिरिक्स, इंटरनेट द्वारा प्राप्त।
13. राजस्थानी लोक साहित्य, नानूराम संस्कर्ता, पृ. स. 83।
14. राजस्थानी लोक साहित्य भाग–1, गंगा प्रसाद कमठान, पृ. स. 81।

लैंगिक अनुकूलन की प्रक्रिया व्यक्तित्व निर्मिति और समाज

डॉ. विभा नायक*

जेंडर या लैंगिकता एक समाजशास्त्रीय विषय है जिसका अर्थ है स्त्री और पुरुष की सामाजिक और सांस्कृतिक परिभाषा। दूसरे शब्दों में कहें तो समाज स्त्री और पुरुष को किस तरह देखता है, उन्हें कैसी भूमिकाएँ, संसाधन एवं अधिकार देता है, इसका निर्धारण जेंडर का विषय है। यानी समाज की दो प्रमुख इकाइयों की व्यक्तित्व निर्मिति से इसका गहरा संबंध है और यह संबंध और इसका प्रभाव इतना गहरा है कि न केवल इन दोनों इकाइयों का व्यवहार, उनकी सोच–समझ, उनके दायित्व और कार्यक्षेत्र इस संरचना से प्रभावित होते हैं, बल्कि समाज की अन्य इकाइयों की स्थिति एवं उनके प्रति व्यवहार भी इससे प्रभावित होता है। स्त्री पुरुष और हाशिये की इकाइयों के प्रति नियमबद्ध व्यवहार की यही सुनियोजित प्रक्रिया क्रमशः रूढ़ होते–होते वृहत मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया का अंग बनकर समाज विशेष की संस्कृति का हिस्सा बन जाती है। यह मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया इतनी सूक्ष्म और विरल होती है कि इसके अस्वीकार का प्रायः प्रश्न ही नहीं उठता। स्त्री और पुरुष स्वाभाविक रूप से इनका पालन करते हैं और समाज में रहने वाली अन्य इकाइयाँ स्वतः ही स्वयं को हाशिये पर पड़ा हुआ स्वीकार कर लेती हैं। चूँकि यह प्रक्रिया समाज के अनुसार होती है, समाज सापेक्ष होती है, अतः यदि पितृसत्तात्मक व्यवस्था के मूलभूत सिद्धांतों को छोड़ दिया जाए तो विभिन्न समाजों और अंतर्समाजों द्वारा गढ़े इन लैंगिक साँचों में कुछ अंतर हो सकता है।

जेंडर के विषय में अपने विचार प्रस्तुत करते हुए सुप्रसिद्ध विचारक पेपनेक का मत है कि– सामाजिक जेंडर स्त्री और पुरुषों से संबंधित है, जो स्त्री और पुरुष की भूमिकाओं को सांस्कृतिक आधार पर परिभाषित करने का प्रयास करता है एवं जिसका संबंध स्त्री और पुरुष के विशेषाधिकारों से है। पेपनेक यहाँ सामाजिक व्यवस्थापन की दृष्टि से स्त्री और पुरुष के विभक्त कार्यक्षेत्रों की ओर संकेत कर रहे हैं। इसी प्रकार ऐन ऑकली भी जेंडर को जैविक और शारीरिक स्थिति से अलग एक समाजशास्त्रीय संरचना मानते हैं। उनके अनुसार भी– जेंडर का अर्थ स्त्रीत्व और पुरुषत्व के रूप में सामाजिक रूप से किये गए विभाजन से है। यहाँ यह स्पष्ट है कि लैंगिकता एक ऐसा सामाजिक समीकरण है जिसे समाज द्वारा निर्मित किया गया है। इस निर्मिति के अंतर्गत पुरुष और स्त्री को क्रमशः प्रमुख और गौण के रूप में स्वीकार किया गया, जिसका आधार था जैविक विश्लेषण। यह माना गया कि स्त्री पुरुष की अपेक्षा कम बलवान होने के साथ साथ भावनात्मक अधिक और तार्किक कम है, अतः शक्ति और तर्क से मुक्त कार्य ही स्त्री के लिए उपयुक्त हैं। इन दोनों क्षेत्रों के लिए पुरुष ही उपयुक्त है। अतः गृहस्थी संभालना स्त्री का दायित्व और गृहस्थी का संरक्षण पुरुष का कार्यक्षेत्र माना गया। इसी विचार का असर था कि स्त्रियों के लिए शिक्षा, अवसरों तथा अन्य सुविधाओं को जरूरी नहीं माना गया। जबकि पुरुष के लिए इनका महत्व बना रहा।

असल में 19 वीं सदी के आखिर में और 20 वीं सदी के आरंभ में समाजशास्त्रियों के एक वर्ग ने यह मान लिया था कि बौद्धिक, भावनात्मक और नैतिक क्षमताओं की दृष्टि से पुरुष और स्त्री में पर्याप्त असमानता है। ब्रिटिश समाजशास्त्री हर्बर्ट स्पेन्सर ने एक उदार नारीवादी के रूप में कार्य करते हुए महिलाओं के अधिकारों की ओर ध्यान दिया किन्तु उन्हीं का यह भी मत था कि– न्याय और तर्क क्षमता महिलाओं में कम होती है अतः उन्हें अपने परिवार की देखभाल में अपनी क्षमता का प्रयोग करना चाहिए। साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि महिलाओं को स्वाभाविक रूप से शक्तिशाली पुरुष की सुरक्षा में रहना पसंद है। इसी प्रकार कॉम्टे के अनुसार भी महिलाएँ अपनी भावनात्मक और आध्यात्मिक श्रेष्ठता की वजह से परिवार और घरेलू जीवन के लिए ही उपयुक्त हैं। दुरखीम स्त्रियों की सामाजिक अधीनता को बताने के लिए जैविक कारकों की बात करते हैं। उन्होंने भी यही माना कि स्त्री और पुरुष का उनकी क्षमता के अनुसार कार्यविभाजन होना चाहिए। बात अगर मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की हो तो आरंभिक मनोविज्ञान की धारणाएं भी

***श्यामा प्रसाद मुखर्जी महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।**

इससे अलग नहीं थीं। यहाँ स्त्री पुरुष के जैविक अंतर के आधार पर मनोविज्ञानिक स्थापनाएं की गईं जिनके अनुसार भी स्त्री को पुरुष की तुलना में कम ही आँका गया। इन्हीं सब के प्रभाव से इन धारणाओं को बल मिलता गया कि स्त्री के कार्यक्षेत्र में प्रायः वे कार्य आने चाहिए जिनमें शक्ति और क्षमता की कम आवश्यकता हो। इस प्रकार स्त्री को गृहस्थ जीवन और पारिवारिक दायित्वों के ही अनुकूल माने जाने की धारणा पुख्ता होती गई। हालांकि ये धारणाएं पितृसत्तात्मक समाजों की शुरुआती अवस्था में ही बननी शुरू हो गईं थीं, जिनका असर आगे तक बना रहा। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि अंतर और कमतर माने जाने की यह स्थिति समाज सापेक्ष थी। उदाहरण के लिए आरंभिक भारतीय समाज व्यवस्था या ऋग्वैदिक युग में ऐसी स्थिति नहीं थीं किन्तु कालांतर में विभिन्न घटनाक्रमों के चलते स्थितियाँ बदलती चली गईं।

कहने का तात्पर्य यह कि शक्ति को बाह्य आक्रमणों से क्रमशः समाज, देश और राष्ट्र संरक्षण की दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण घटक माना गया। जिसका परिणाम था उन्हीं स्थितियों के अनुरूप स्त्री और पुरुष का अनुकूलन। हालांकि शुरुआती समाजों में यह जरूरी रहा होगा जबकि समाज का अस्तित्व शारीरिक बल पर ही आधारित था। किन्तु लोकतान्त्रिक समाजों के उदय के साथ इन मान्यताओं में परिवर्तन भी देखने को मिला। किन्तु सुदूर अतीत से लिखित इतिहास तक रूढ़ि बन चुके सिद्धांतों को बदल पाना कोई कोई सहज बात नहीं है। तब जबकि संस्कृति के प्रत्येक पाठ में सोच विचार, व्यवहार, नैतिकता के मानदंडों, पहनने ओढ़ने, उठने बैठने से लेकर मौखिक अमौखिक भाषिक अभिव्यक्तियों में भी लैंगिक अनुकूलन के आधार पर भेदभाव पाँव पसार चुका हो।

लैंगिक अनुकूलन :– अनुकूलन की यह प्रक्रिया सामाजिक मान्यताओं के अनुरूप पुरुष और स्त्री को साँचाबद्ध करने की प्रक्रिया है। दूसरे शब्दों में कहें तो पुरुष द्वारा पुरुषत्व और स्त्री द्वारा स्त्रीत्व की सामाजिक, सांस्कृतिक परंपरा के आधार पर सहज स्वीकार्यता अनुकूलन है। नारीवादी मानव विज्ञानी सिमोन द बॉउवार ने अपने पुस्तक सेकंड सेक्स में कहा है कि– स्त्री जन्म नहीं लेती बल्कि गढ़ी जाती है। सिमोन का यह कहना पूर्णतः यह स्पष्ट कर देता है कि यह शिशु पालन की ऐसी प्रथा है जिसमें एक स्त्री को निरंतर यह याद दिलाया जाता है कि उसे पहनना, ओढ़ना, खाना, गाना, हँसना, बोलना और सारे कार्य उसी प्रकार से करना चाहिए जैसा कि समाज उससे चाहता है। ठीक यही प्रक्रिया पुरुष के साथ भी है। भावनाओं पर नियंत्रण, निर्भीकता, निडरता, शक्तिशाली होना पुरुषत्व के लक्षण के रूप में स्थापित किये जाते हैं। जिनकी प्राप्ति बालक के श्रेय के रूप में प्रस्तुत की जाती है। इस प्रकार के भिन्न व्यवहारों की शिक्षा बच्चे के जन्म के साथ ही शुरू हो जाती है। जिसका परिणाम यह होता है कि लगभग पाँच वर्ष की आयु तक पहुंचते पहुँचते बच्चा अपने सामाजिक साँचे के प्रति एक समझ और सजगता हासिल कर लेता है। उसे पता होता है कि वह एक पुरुष के रूप में बड़ा हो रहा है या वह एक कन्या है।

बच्चे को गढ़ने की इस प्रक्रिया में इतनी सहजता होती है कि किसी विशेष प्रयास की आवश्यकता नहीं होती। माँ का व्यवहार उनका व्यक्तित्व, पिता का व्यवहार और उनका व्यक्तित्व बच्चे के लिए प्रथम सीख होता है। जो धीरे धीरे आस पास के वातावरण और व्यवहार से और पुष्ट होता रहता है। इसमें योगदान धर्म शास्त्रों और धार्मिक मान्यताओं का भी होता है। जिनमें लैंगिक अनुकूलन से निर्मित साँचों के अनुरूप ही वृत्तान्त होते हैं। जिनका निषेध या जिन पर प्रश्नचिह्न कोई साधारण बात नहीं होती। बल्कि प्रायः उनका प्रयोग या उनकी व्याख्या लैंगिक अनुकूलन को पुष्ट करने और सामाजिक साँचों को मज़बूत करने के लिए की जाती है। जैसे तत्कालीन स्थितियों के अनुरूप मनुस्मृति में स्त्री के विषय में कहा गया है– स्त्रियों का विवाह संस्कार ही वैदिक संस्कार, यज्ञोपवीत, पति सेवा ही गुरुकुल निवास, वेदयाध्ययन और गृहकार्य ही अग्निहोत्र कर्म हैं। तो कुरान मजीद में तो स्त्रियों को पुरुषों की जागीर ही घोषित कर दिया गया है। एक उदाहरण दृष्टव्य है– मुसलमानो, तुम्हारी औरतों में जो बदकारी कर बैठें, उन पर अपने लोगों में चार आदमियों की गवाही लो। अगर वे उनकी बदकारी की गवाही दें, तो इन औरतों को घरों में बंद रखो, यहाँ तक कि मौत उनका काम तमाम कर दे। या खुदा उनके लिए कोई और रास्ता पैदा करे।

कुल मिलाकर कहें तो समाज, संस्कृति, धर्म और परिवेश मिलकर बच्चे के उस संस्कार का निर्माण करते हैं जिसमें उसकी सहज स्वीकृति होती है। यहीं शक्ति और सत्ता के सभी व्यवहार, विकसित होती भाषिक समझ के साथ बच्चे के संस्कार का हिस्सा बन जाते हैं। परिणामतः प्रायः वह उसी रूप में विकसित होता है जैसा कि समाज उसे विकसित होते देखना चाहता है। कैथरीन ए मैकिनोन अनुकूलन की इस सुनियोजित प्रक्रिया के विषय में कहतीं हैं कि दृ यह अनुकूलन जिस प्रक्रिया द्वारा होता है, वह सामाजीकरण वास्तव में शक्ति की ही अभिव्यक्ति है। अनुकूलन की इस प्रक्रिया में पुरुष और स्त्री स्वतः ही शासक और शासित के रूप में सांस्कृतिक स्थिति के आधार पर अपने व्यक्तित्व का तर्क भी तय कर लेते हैं। यही कारण है कि पुरुष और स्त्री के साँचों को प्रायः कोई चुनौती नहीं मिलती और ये न केवल उसी रूप में बने रहते हैं बल्कि उनके साथ कई सामयिक तर्क भी शामिल होते रहते हैं। इस संबंध में जॉन स्टुअर्ट मिल ने पितृसत्तात्मक व्यवस्थाओं में स्त्री की स्थिति पर विश्लेषण करते हुए अपनी पुस्तक द सबजेक्शन और वूमेन में कहा है– स्त्रियों पर पुरुषों का शासन अन्य सत्ताओं से इसलिए अलग है क्योंकि यह बल का नियम नहीं बल्कि इसे स्वेच्छा से स्वीकार किया जाता है।

कुल मिलाकर कहें तो इसी अनुकूलन के आधार पर व्यक्तित्व का निर्माण होता है। सामाजिक साँचा जितना मजबूत होगा सामाजिक संरचना में टूट फूट उतनी ही कम होगी। किन्तु यह टूट फूट न होना या समाज का जस का तस बने रहना कोई सकारात्मक स्थिति नहीं है। फिर सांस्कृतिक आदान प्रदान, इतिहास का पुनर्स्मरण और पुनर्जागरण, समतावादी स्थितियाँ न केवल समाज का रूप परिवर्तन करती हैं बल्कि सामाजिक इकाइयों को भी नए परिप्रेक्ष्य में पुनरव्यक्त होने के लिए एक माहौल प्रस्तुत करती हैं।

वर्तमान स्थितियों के परिप्रेक्ष्य में देखें तो हम पाते हैं कि समाज की रूढ़ियाँ टूटी हैं। शक्ति के जो समीकरण पहले थे वो अब नहीं हैं। चाहे व्यवसाय की बात हो या स्त्री पुरुषों के अलग अलग दायित्वों की हर ओर परिवर्तन आया है। तर्क और शक्तितंत्र पर आधारित अवधारणाएं अब वैसी नहीं हैं जैसी पहले थीं। इनका स्वरूप अब पुरुष के साथ साथ स्त्रियों के लिए भी अनुकूल हुआ है। जिसका प्रमाण है स्त्री और पुरुष की बराबर भागीदारी। अब कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं है जिसमें पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलातीं, निरंतर आगे बढ़ती स्त्रियाँ न हों। स्त्रियों और पुरुषों के लिए शिक्षा और व्यवसाय के समान अवसरों ने पुरानी चली आती उन सभी मान्यताओं को ध्वस्त किया है, जिनके अनुसार यह माना जाता था कि स्त्रियाँ केवल घर संभालने के ही योग्य हैं।

इसके साथ ही कानून और अधिकारों की समझ ने स्त्रियों को भी अपने आत्मसम्मान के लिए सजग होना सिखाया है। राजनीति, प्रशासन, अर्थशास्त्र, शिक्षा और सेना में महिलाओं की भागीदारी ने यह सिद्ध कर दिया है कि योग्यता और ज्ञान किसी एक वर्ग का अधिकार नहीं है। अवसरों की सुलभता किसी को भी सफल बना सकती है। हालांकि अभी भी ऐसे बहुत से क्षेत्र हैं जहां काम किया जाना जरूरी है। क्योंकि समाज जितना अपनी इकाइयों के प्रति अनुकूल होगा, उसका विकास भी उसी तीव्रता से होगा।

संदर्भ–सूची :–

1. De Beauvoir, Simone, Translated and edited by H.M. Parshley, "The second sex", Published by Vintage Random House, 20, Vauxhall Bridge Road, London.
2. Rubin, Gayle, "The Traffic in Women" : "Notes on the Political Economy of Sex in Toward an Anthropology of Women", edited by R. Reiter, New York, Monthly Review Press, 1975.
3. Machinnon, Catherine, "Toward a Femiist theory of state", Cambridge mass Harvard University Press, 1989.
4. Bhargav Vidut, "Feminnist Social Thought : An introduction to six key thinkers", Rawat Publication, Jaipur, N.Delhi, 2004.
5. भाष्यकार पद्मभूषण डॉ श्रीपाद दमोदरण सातवलेकर, "ऋग्वेद का सुबोध भाष्य", प्रकाशन संस्थान : गीताप्रेस गोरखपुर।
6. तर्जुमाकारः मौलाना फतेह मोहम्मद खां साहिब जालंधरी, रूपांतरकार : कौसर याज़दानिई एम. ए. सूर निसा 4, लन तनालू 4: 123, 'कुरान मजीद' प्रकाशक : एम शफीक एंड संस 4138, उर्दू बाज़ार, जामा मस्जिद, दिल्ली –6.

दलित स्त्री केन्द्रित कहानियों में गरीबी

डॉ. मिथिलेश कुमारी*

हमारा समाज जातिसत्ता, धर्मसत्ता और पितृसत्ता से चालित है और आज के समय में ये व्यवस्था कुछ जगह और कुछ मामलों में ही कमजोर हुई है अन्यथा जीवन, परिवार, समाज वैसे ही चालित है। वही धार्मिक रूढ़िगत आडम्बर, वही जातिगत दबदबा कायम है लेकिन इससे भी भयावह वह स्थिति है, जो जीवन संकट के रूप में उपस्थित है। हम जितना प्रकृति से दूर होते जा रहे हैं और राजनीतिक स्तर पर जो आर्थिक नीतियाँ बन रहीं हैं, उससे अमीर गरीब, स्त्री–पुरुष, पशु, पक्षी सभी का जीवन खतरे में है। ये अलग बात है कि जिसका दबदबा प्राकृतिक, राजनीतिक और सामाजिक स्तर पर है वह कुछ ज्यादा सुविधामय है और तब तक जीवन जीने के लायक है, जब तक संसाधन ख़त्म नहीं हो जाते। कोविड–19 संक्रमण के दौरान भी हमने देखा कि सबसे ज़्यादा समस्यायों का सामना वंचित वर्ग को करना पड़ा जो अर्थाभाव से जूझ रहे हैं। आज के समय में सबसे अधिक संकट में गरीब हैं।

स्त्रियों की समस्यायों को सिर्फ़ पितृसत्ता के बरक्स देखने की बजाय हमें व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखना होगा। समाज में जिस भी वर्ग को शक्ति अधिक मिलेगी वह उसका दुरूपयोग करेगा। स्त्री विमर्श का मूल उद्देश्य एक मनुष्य के रूप में स्त्री को स्थापित करना है। यह कोई पुरुष विरोधी विमर्श नहीं है क्योंकि पितृसत्ता ने सिर्फ स्त्री के मानसिक और शारीरिक विकास को नहीं बाधित किया है बल्कि पुरुष को भी विकृत किया है। प्रभा खेतान लिखती हैं "यह कोई विछिन्नतावादी नारा नहीं है इसका उद्देश्य तो ऐसे समाज की स्थापना करना है जहाँ स्त्रियोचित पुरुषोचित का कोई अलग सामाजिक सन्दर्भ न हो।"[1]

दलित वर्ग की महिलाओं के साथ कई तरह की समस्याएँ विद्यमान हैं। जातिगत भेद–भाव, आर्थिक समस्या, श्रम का शोषण आदि। शुरूआती दौर की हिन्दी कहानियों को देखें, तो उनमें आर्थिक विपन्नता की समस्या को मुख्य विषय बनाया गया है। प्रेमचंद्र ने भी कई कहानियों सद्गति, पूस की रात, दूध का दाम, ठाकुर का कुआँ आदि में दलित के यथार्थ को चित्रित किया है। 20वीं शताब्दी की लेखिका चन्द्रकिरण सौनरेक्सा ने गरीबों, मजदूरों, पिछड़ों और शोषितों को अपनी कहानियों का प्रमुख विषय बनाया है और अपने समय के यथार्थ के विभिन्न यथार्थपरक चित्र उकेरे हैं। उनकी कहानियों में दलित समाज के विभिन्न पक्षों पर विचार किया गया है। यहाँ पर मैंने उनकी कुछ कहानियों को लिया है। आदमखोर, प्रेम और रोटी, बोलती लाश, बेजुबाँ, किराये की माँ आदि कहानियों में गरीब वर्ग के यथार्थ के विभिन्न पहलुओं पर विमर्श दिखाई देता है। 'प्रेम और रोटी' कहानी में वह दिखाती हैं कि गरीबी किस प्रकार अन्तरंग संबंधों का रूमान कम कर देती है।

'आदमखोर' कहानी का नाम ही व्यंग्यात्मक है। जीवन शहर में एक पुराने खपरैल की कोठरी में किराये का मकान लेकर पूरे परिवार के साथ रहता है। वह शहर में आकर और ज़्यादा परेशान हो गया है। जीवन अपनी घरवाली को जिसके गौना को अभी 7 महीने ही हुए हैं। उसे भरपेट खिला नहीं पाता। इसका एहसास है उसे, लेकिन कहीं कोई रास्ता नहीं दिखाई देता। काम न मिलने से गुस्सा ज़्यादा करने लगा है और हर बात पर गुनिया पर ही गुस्सा उतारता है। यहाँ पर सवाल काम न मिलने का है, इसके साथ–साथ जीवन पुरुषवादी अहं से युक्त है। वह बर्तन नहीं माँज सकता। मजदूरी करता है परन्तु अपने जीवन से असंतुष्ट जीवन का क्रोध अपने परिवार पर ही उतरता है। जीवन जिन्दगी की कठिनाईयों से बहुत ज़्यादा त्रस्त है। लेखिका ने उसके मानसिक बदलावों को भी वर्णित किया है। परिस्थितियाँ मानसिक संरचना का निर्माण कैसे करती है? यहाँ देखा जा सकता है। वह चाहकर भी जब अपनी परिस्थितियों में कोई बदलाव नहीं कर पाता तो धीरे–धीरे ताड़ी के नशे में डूबने लगता है। अपनी पत्नी–बच्चों सबको वह भूल जाना चाहता है क्योंकि इनका दुःख उससे देखा नहीं जाता! वह स्वयं को सबसे काटने लगता है।

***सहायक आचार्य, स्टारेक्स विश्वविद्यालय, गुरुग्राम।**

गुनिया जीवन लाल की पत्नी है जो गर्भवती है और उसे आम की चटनी खाने का मन हो रहा है। यह उसका तीसरा बच्चा है। पार्वती और बन्नू दो बच्चे पहले से हैं। अभाव इतना है कि चटनी तक नहीं अट रही। जीवन कहता है– ''तेरी तो अक्ल मारी गई है, भला एक पैसे में अंबिया मिलेगी? किसी ने दी भी तो छोटी पकड़ा देगा। फिर उसके साथ एक पैसे का धनिया, पुदीना हो, तब तेरे लिए चटनी बने। ...इससे तो दो पैसे की हरी मिर्चे मँगवा ले, साँझ सवेरे की रोटी को काफी होंगी। सब मजे से भरपेट खा लेंगे।''[2]

एक अति गरीब गर्भवती महिला को चटनी भी नहीं मिल रही। सम्पूर्ण पोषक आहार कहाँ से मिलेगा? इतना ही नहीं धन जीवन में कितना मायने रखता है। यह सम्बन्धों की मधुरता छीन लेता है। 'आदमखोर' कहानी में एक शहर में मजदूरों की क्या स्थिति होती है? वह कितने बुरे हालातों में जीता है? मूलभूत जरूरतें भी नहीं पूरी होती, दूसरी तरफ चमचमाती सड़कें, पांच सितारा होटल हैं। वहीं मजदूरों और गरीबों के लिए स्वास्थ्य, सुख–सुविधाएँ कोसो दूर हैं। एक मजदूर की पत्नी कितनी विवश होती है? सारी गृहस्थी सँभालते, अभावों से जूझते प्रसव में उसकी मृत्यु हो जाती है और पति शराब के नशे में अपनी गरीबी को भूल जाने का यत्न करता है लेकिन स्त्री इस गरीबी को झेलते हुए जिंदगी से दो चार होती है। "एक रूपया नरन से उधार लेकर दिया था कि गुड़ तेल सोंठ ले आ। "तेल भी नहीं है।" दाई चिंतित हो उठी– "अब क्या होगा? आने दो इस जीवना को कैसी खबर लेती हूँ, घरवाली के प्रान होंठों पर आ रहें हैं। आप कहीं बोतल चढ़ाये पड़ा होगा।"[3]

व्यवस्था बार–बार अपने चरित्र को दोहराती है। शहरों में मजदूरों की बस्ती में 21वीं सदी में भी सुख सुविधाओं के नाम पर कुछ नहीं होता। उनका बसाव भी ऐसी जगहों पर होता है, जहाँ प्रदूषित वातावरण होता है। पानी की किल्लत, रहने की किल्लत! ऐसे समाज में स्त्रियों के स्वास्थ्य, पोषण, प्रजनन और बच्चों के पालन पोषण की स्थितियों पर भी दृष्टिपात करना होगा अर्थात इनके जीवन के व्यापक पक्षों पर विचार करना होगा। पानी की किल्लत आज से 50 साल पहले जितनी थी, क्या वे स्थितियाँ आज बदल गयी हैं या जस की तस हैं? अब तो पानी का बाजार खड़ा है, तब तो पानी का बाजार नहीं था, लोग हैंडपंप, कुएँ, तालाब, झील के भरोसे थे। अब तो नदियों, झीलों, तालाबों का अस्तित्व ही ख़त्म हो रहा है। नदियों का पानी पीने लायक नहीं बचा, भूजल का स्तर कम हो रहा है। चन्द्रकिरण सौनरेक्सा की कहानी आदमखोर का एक दृश्य देखिए– "गर्मियों में इस नल पर खासा महाभारत मचा रहता है। कभी कभी तो सर फूटने की नौबत आ जाती है। कोढ़ में खाज की भांति उन कटरेवालो के कपड़े धोने, बर्तन माँजने और मुँह धोने का स्थान भी वही नल का चबूतरा था, क्योंकि खपरैलो से घिरी उस धरती में पक्के फर्श के नाम पर बस नल के समीप चार पत्थर गड़े थे। बड़ी–बूढ़ियाँ, मर्द तथा बच्चे वहीं खुले में नहा लेते थे। बहुएँ और युवती कन्याएँ दसवें–पन्द्रहवें दिन अपनी–अपनी कोठरियों के आगे चारपाईयाँ खड़ी करके उस पर पुराने लहँगे और ओढ़नियों के परदे लटकाकर नहा लेती थीं।"[4]

ग़ौरतलब है कि यह शहर में किराये के मकान में रह रहे गरीबों मजदूरों, रेहड़ी वालों के घरों का दृश्य है। क्या अब ये दृश्य बदल गया है? यह दृश्य अभी और ज़्यादा भयावह रूप ले चुका है। एक गरीब वर्ग की स्त्री का अधिकांश समय श्रम में बीतता है। उसी से वह दो चार पैसे कमा लेती है। पुरुषों की स्थिति भी ज्यादा भिन्न नहीं है। पुरुष वर्चस्व दिखता है, घर के कामों को लेकर, अर्थात स्त्री को पुरुष से ज़्यादा श्रम करना पड़ता है। वही हालात एक शिक्षित कामकाजी स्त्री की है लेकिन उसके पास विकल्प है कि वह घर के कामों में नौकरों की सहायता ले सकती है। बेजुबाँ कहानी में चन्द्रकिरण जी ने एक स्त्री जो अकेले उपले पाथ–बेचकर अपना घर चलाती है, उसके जीवन के कटु–यथार्थ को अभिव्यक्त किया है। "बच्चा बीमार है। खाँसी बुखार से सूखकर कांटा हो गया है। उसे री–री करता छोड़कर उपले उठाने आई थी। बादल हो रहे थे, बरस पड़े तो उसकी चार दिन की मेहनत और दो बेला की रोटियों पर पानी पड़ जाएगा। जस्सो सबेरे से ही भूखी फिर रही है।"[5] जस्सो गोबर उठाने का काम करने गई है वहाँ गोबर उठाने के लिए भी मार पीट हो रही है! "छींके पर रखी है डेढ़ रोटी नोन तेल चुपड़कर खा लीजो।" 'नोन तेल'– जस्सो का मन क्षुब्ध हो उठा। कितने दिनों से वह आलू की तरकारी को कह रही है पर नन्दों ने आज बसंत पंचमी को भी न बनाई। पैसे ही न थे।"[6]

इस कहानी में कई सवाल उठाये गए हैं जहाँ पर बच्चे सब्जी, दूध, दाल भी न पाएं उस समाज में सारा जीवन पेट की आग बुझाने में ही खप जाता है। अभी कुछ साल पहले खाद्य योजना शुरू की गयी थी। इस तरह अन्त्योदय अन्न योजना, इंदिरा आवास आदि अनेकों योजनाएँ हैं पर ये सब भ्रष्टाचार की भेट चढ़ गए। इन सारी योजनाओं से भी स्थिति पूरी तरह नहीं बदली। कुछ तो इन योजनाओं में ही ख़ामियाँ हैं। "दिन भर गोबर, कूड़े, चक्की–चरखे से उसे छुट्टी ही कब मिलती है जो टाइम से दूध पिला ले? फिर दूध उतरता भी नहीं– सूखी रोटियों से भला दूध होता? गरम कपड़े कहाँ से लाये। इधर उसका गुन्नू खाँसते खाँसते बेदम हो जाता है। आए दिन बुखार में तपता रहता है। जस्सों के पाँव का फोड़ा दो बार पककर फूट चुका है केवल मरहम के अभाव से अच्छा होने नहीं आता।"[7] यहाँ पर गरीबी ही मूल समस्या है जिसके कारण वह अपने बच्चों का इलाज नहीं कर पाती। ठीक से खाना भी नहीं मिल पाता और काम इतना अधिक है कि नन्दों के पास अपनी देख–रेख के लिए समय ही नहीं है। चिड़चिड़ी हो गयी है, बात बात पर बच्चों को थप्पड़ लगा देती है।

बेजुबाँ, बोलती लाश और आदमखोर कहानियों में अत्यंत गरीब परिवारों को चित्रित किया गया है। ये तीन अलग–अलग घरों की कहानियाँ हैं और सभी कहानियों को पढ़ने पर लगता है कि पूरे भारत के वंचित वर्ग का दृश्य सामने खींच दिया गया है। 'बेजुबाँ' कहानी की नन्दो उपले पाथकर और दूसरों के घर का काम करके अपना घर चलाती है फिर भी उसके बच्चे भूखे रहते हैं। सब्जी तक नहीं जुट पाती उसकी बेटी जस्सो (7 साल की) गोबर बीनकर उपले बना लेती है। इससे भी कुछ खर्च निकल आता है। उसका छोटा बेटा बीमारी में दवाई न हो पाने के कारण मर जाता है। इस कहानी में एक तरफ उच्च वर्गीय रहन–सहन दिखाया गया है। दूसरी तरफ नन्दो के पूरे परिवार को चित्रित किया गया है। सुबह से शाम तक फिरंगी की तरह नाचने के बावजूद उसके श्रम का मूल्य इतना नहीं है कि वह अपना और अपने बच्चों का पेट भर सके। उसका पति घर से दूर कहीं दूसरी जगह काम करता है जो कभी साल दो साल में घर आता है।

इस कहानी का परिदृश्य लड़ाई छिड़ने के वक्त का है। अब ये लड़ाई भारत–पाक या भारत–चीन कौन सी है स्पष्ट नहीं है? युद्ध की स्थिति में महँगाई बढ़ जाती है। उस समय गरीबों पर क्या गुजरती है? इसका वर्णन भी लेखिका इस कहानी में करती हैं। गरीबों के लिए अस्पताल में क्या सुविधाएँ होती हैं और वहाँ के डाक्टर नर्से या तथाकथित उच्च मध्यवर्गीय समाज उनसे किस प्रकार हेय और अपमानजनक भाषा में बात करता है? इसका वर्णन भी कहानी में हुआ है। अस्पतालों में समय पर दवाएँ नहीं मिलती, न ही बिस्तर की व्यवस्था होती है। सरकारी अस्पतालों में ग़रीब मजबूरी में जाते हैं। यह कहानी कई बिन्दुओं की तरफ़ ध्यानाकर्षित करती है। श्रम का उचित मूल्य न मिलना, काम का कोई नियत समय न होना और अराजकता उच्च वर्ग की चेतना में है। मँहगाई में भी नन्दो अपने उपलों का दाम नहीं बढ़ा सकती बल्कि और ज़्यादा काम करना पड़ता है। नहीं सस्ता देगी दूसरी जगह से लोग ले लेंगे। जबकि ओवलटीन का डिब्बा मँहगा हो गया है।

हमारी आर्थिक व्यवस्था ही असमानता पर टिकी है जहाँ मानसिक श्रम करने वालों को भरपूर वेतन मिलता है। वहीं शारीरिक श्रम करने वालों को इतना भी नहीं मिलता कि वह अपनी जिन्दगी की न्यूनतम जरूरतें भी पूरी कर सकें। ये भेदभाव कहाँ से पैदा होता है? क्यों होता है? अन्य संस्थान जब देखो तब अपनी कीमत बढ़ा देते हैं परन्तु किसान और मजदूर अपने काम की उचित कीमत की माँग भी नहीं कर सकते? इसका प्रमुख कारण यह है कि इस वर्ग का न तो राजनीति में हस्तक्षेप है और न ही सत्ता संस्थानों में भागीदारी। वर्णाश्रम व्यवस्था को वे अब भी भोग रहे हैं। जाति व्यवस्था ने उन्हें अछूत, दलित बना दिया है और हर सुविधा से वंचित कर दिया है। उनके पास अपनी जमीन नहीं है, सम्पत्ति नहीं है, उनके पूर्वज जिन कार्यों को पहले से करते रहे हैं वही काम करने की कुशलता उनके पास है।

'बोलती लाश' कहानी एक बूढ़े व्यक्ति की है जो चने बेचकर अपना गुजारा करता है। अत्यन्त बूढ़े इस व्यक्ति की जीवन–गाथा कम दारूण नहीं है। ग्यारह बच्चे हुए सब मर गये। एक तो अभी जवानी में

मर गया। उसकी पत्नी अभी जिन्दा है। उसी बहू के कारण इस बूढ़े व्यक्ति को कन्धे में झोली लटकाकर गली–गली घूमना पड़ता है। क्योंकि बहू अब अन्धी हो गई है बहू अन्धी कैसे हो गई? बेटे के ग़म में बूढ़े ने बिस्तर पकड़ लिया तब बहू ने ही घर गृहस्थी संभाली। ''कलुआ के ग़म में मैंने चारपाई पकड़ ली थी– छः महीने तक पड़ा रहा बीमार और मेरी लक्ष्मी–सी बहु इतना बड़ा पहाड़–सा दुख झेलकर भी मेहनत–मजदूरी कर मेरी दवा–दारू करती रही। दुखती आँखों से ही दालें बीन–बीनकर दे आती थी। लेकिन क्या देते हैं ये हरामी बनिये। पाँच सेर मसूर बीनने पर डेढ़ पैसा। उसने एक–एक दिन में पाँच–पाँच धड़ी मसूर बीनी, दो–दो धड़ी बेसन पीसा। आदमी की देह हाड़–माँस की ही तो बनी है, लोहे लक्कड़ की नहीं। वह भी माँदी पड़ गई थीं।''[8]

यहाँ भी श्रम का उचित मूल्य नहीं मिल रहा और मेहनत इतनी कि उसकी आँखें चली गईं। दूसरा दृश्य ये है कि बूढ़ा भी अब बीमार पड़ गया और कई दिनों के बाद उठा तो उसे रेजगारी नहीं मिल रही थी। अतः बैंक उसे खुले पैसे के लिए जाना पड़ा। तब भी बैंकों का यही हाल था, जो अब है। 2017 की निवर्तमान भारत सरकार द्वारा लागू नोटबंदी के कारण अनेकों को लाइन में लगकर अपने प्राण गँवाने पड़े थे। अनेकों वृद्ध तो लाइन में लगकर बीमार पड़ गये या तो मर गये। यहाँ भी बैंकों के बाहर लगी लाइन में इधर–उधर भगदड़ हो जाने पर यह बिचारा वृद्ध धक्का खा गया और मर गया।

समकालीन दलित स्त्री केन्द्रित कहानियों में दलित स्त्री को बदलते समय के साथ जागरूक दिखाया गया है। दलित स्त्री केन्द्रित कहानियों में पितृसत्ता के प्रति पुरजोर विरोध दिखाई देता है लेकिन यह सिर्फ वर्ग–संघर्ष या सवर्ण बनाम दलित का संघर्ष न बनकर रह जाये इसके प्रति हमें सचेत रहना होगा। आधुनिक युग में राजनीति, बाजारवाद, मीडिया एक बहुत ताकतवर तंत्र है जिसके सबसे ज़्यादा शिकार दलित, कमजोर, पिछड़ा, मजदूर और किसान हैं। गरीबी, भुखमरी, कुपोषण, बेरोजगारी सुरसा की तरह बढ़ रही है क्योंकि ये तंत्र वर्णव्यवस्था और पितृसत्ता को पोषित करते हैं। साधना, योग पद्धति इन सबको हम अपने समाज में मनुष्य मन के विकारों, क्रोध,ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार को संयमित करने के साधन के रूप में देखते सुनते हैं। लेकिन जब तक इन भावनाओं के उद्भावक कारणों को नहीं दूर किया जायेगा तब तक ये सारी विधाएँ आधी–अधूरी हैं। शरीर और मन को एकाग्र करने के लिए साधना पद्धति जरूरी हो सकती है। जीवन की कठिनाइयों से उत्पन्न परिणामों को इससे दूर नहीं किया जा सकता। असमानता पर आधारित समाज को समानता पर आधारित करने से ही ये समस्याएँ हल होंगी। घोर गरीबी में रह रहे परिवारों पर लिखी इन कहानियों के आतंरिक दुःख दर्द का चित्रण करते समय चन्द्रकिरण स्त्री–पुरुष दोनों की अलग–अलग वस्तुस्थिति और परिस्थिति का चित्र भी खींचती है। अभी भी स्थितियाँ बहुत नहीं बदली हैं। आज के समय में सबसे अधिक संकट में गरीब हैं। इस विश्वव्यापी संक्रमण के दौरान भारतीय सरकार के सारे झूठ बिखर गए हैं। भारत देश में इतनी ज़्यादा ग़रीबी है कि 90 प्रतिशत से ऊपर आबादी सामान्य जीवन–यापन भी नहीं कर पा रही है। कोविड–19 संक्रमण के दौरान ये बात पूरी तरह से उजागर हो गई। बेरोजगारी की दर बढ़ गई। असंख्य मजदूर पैदल चलकर अपने घर पहुँचे।

सन्दर्भ सूची :–

1. उपनिवेश में स्त्री, प्रभा खेतान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003, पृष्ठ सं. 114।
2. ए क्लास का कैदी, चन्द्रकिरण सौनरेक्सा, पराग प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.79।
3. वही, पृष्ठ सं. 76।
4. वही, पृष्ठ सं. 72।
5. वही, पृष्ठ सं. 35।
6. वही, पृष्ठ सं. 35।
7. वही, पृष्ठ सं. 36, 37।
8. वही, पृ. 65।

Trials of the soldiers of Indian National Army at The Red Fort (1945-46) : A study

Dinesh mahajan*

Abstract :- The Red fort trials played an important role in Indian modern history and left an important and significant impact over the National movement. There was a series of trials held on the officers of the Indian National army.The charges in these earlier trials were of "Committing a civil offence contrary to the Section 41 of the Indian Army Act, 1911 or the Section 41 of the Burma Army Act" with the offence specified as "**Waging War against the King"** contrary to the Section 121 of the Indian Penal Code.The first of these was the joint trial of Shah Nawaz Khan, Prem Sahgal and Gurbaksh Singh Dhillon.The Red Fort trials, resulted in many Indians getting acquainted with a force that had fought for independence.It led to sympathy for the INA across the country, and before long, demonstrations began springing up in different parts in solidarity with the captured troops.The INA Defence Committee was a committee established by the Indian National Congress in 1945 to defend those officers of the Indian National Army, who were to be charged during the INA trials.The committee declared the formation of the Congress' defence team for the INA and included famous lawyers of the time, including Bhulabhai Desai, Asaf Ali, Sharat Chandra bose, Tej Bahadur Sapru, Kailash Nath Katju.The team gave aremarkable contribution to release the soldiers. The three INA members were then released and welcomed as heroes in all over India.

Key word :- Rred fort, british government. Case, , indian army Prisoners, delhi, major general.

The Red Fort Trials of Indian National Army Played a significant role in Indian History. Under the able and inspiring leadership of Netaji Subhas Chandra Bose, the Indian National Army (I.N.A.) was formed which crossed all barriers of religion, caste and creed. It had only one aim – to launch a final attack on the foreign power in India and free it from foreign domination.

After the bombing of Hiroshima in Japan in the middle of 1945, all resistance of the Axis powers broke, The Japanese army surrendered and with it also the officers and soldiers of the Indian National Army. Netaji died in an air-crash on 18th August, 1945. The entire course of history changed with the surrender of Japan and the death of Netaji. Large number of I.N.A. officers and soldiers were captured. Some were executed, many were severely punished and most of the other officers and soldiers were brought to India for trials. The Indian national army trials(INA), which are also called the red fort trials were the British Indian trial by court martial of a no of officers of the Indian national Army between November 1945 and may 1946, for charges variously for treason, torture, murder and abetment to murder during world war ll. In total, approximately ten court martial were held.

Two significant trials were held in the Red Fort of Delhi. Each changed the course of political history as each involved important legal issues of national and international importance. In 1858, the famous trial of the last Mughal Emperor, Bahadur Shah Zafar, was held in the Red Fort of Delhi. This trial gave a final blow to Mughal rule in India and established British supremacy in the country. Similarly, in 1945, another remarkable trial known as the Indian National Army (I.N.A.) trial was held in the Red Fort of Delhi. This was to be the last trial of the devotees of Indian independence by the British rulers and it turned out to be one of the most interesting and illuminating trials involving national and international legal issues.

The government wanted to treat them as traitors and punish them according. Jawahar Lal Nehru said on the trial of I.N.A. officers. Now a very large number of officers and soldiers of the I.N.A. are prisoners, and some of them have been executed. At any time, The punishment given to them will in fact be a punishment for the whole of India and a deep wound will remain in millions of hearts."[1]

---

* **Faculty & JRF . Devi ahilya university indore.**

In October came the announcement that, initially, The government decided to hold the trials of the I.N.A. officers at Red Fort at New Delhi and instead of trying a large number of officers, picked out three for trial – a Hindu, a Muslim and a Sikh, i.e. **Premnath Sehgal, Shah Nawaz Khan and Gurbaksh Singh Dhillon.**[2] The aim that was not so much to prove that they broke the oath of allegiance but that they committed murders, atrocities and war crimes. The Government of India therefore thought it wise to try the officers to prove their guilt before the general public and the world at large. The government wanted to humiliate them before the people of India. This step cooked the sympathy of the entire nation towards the officers. The Indian National Congress took an active part in organizing the defense of the accused. At the session of All India Congress in September, even before the details of the intended proceedings were announced, Jawaharlal Nehru moved a resolution on the Indian National Army. It referred to the circumstances, both political and military, at the time and pointed out that it would be "a tragedy if these officers, men and women, were punished for the offence of having laboured, however mistakenly, for the freedom of india. The A.I.C.C., therefore, earnestly trusts that they will be released. He announced that **A High Level Defence committee** had been formed by the congress, consisting of top lawyers **Tej Bahadur Sapru, Bhulalbhai Desai, Pandit Jawahar Lal Nehru, and Mr. Asaf Ali** and others.[3]

The three officers to be proceeded against were Captain **Shah Nawaz Khan** of 1/14 Punjab Regiment, the former winner of the sword of honour at the Indian Military academy who had held the rank of Major-General in the I.N.A. and commanded a division in Burma in 1945. Captain **Prem Kumar Sehgal** of 2/10 Baluch Regiment and Lieutenant **Gurbaksh Singh Dhillon** of 1/14 Punjab Regiment who had all joined the Indian National Army organized by the Provisional Government of Free India under the leadership of Sri Subhas Chandra Bose, at Singapore (Shonan) during 1943-45, were arrested as prisoners of war after the Allied forces recaptured Malaya and Burma and were subsequently put on trial before a court martial in the Red Fort of Delhi. They were all charged with waging war against His Majesty the king Emperor of India:[4] The trial continued with short intervals for more than two months during which the prosecution tendered voluminous documentary evidence and cited many witnesses in support of the grave charges leveled against the accused.

All three of the accused were charged with " Waging war against the king contrary to section 121 of the Indian Penal code" and under the Indian Army Act, Section 41, Section 109, I.P.C., of an offence punishable under Section 302, I.P.C., charges of murder were leveled against them.[5] All the three accused pleaded 'not guilty'. The Defence committee was ready to arguing on the behalf of the accused. They had to present their case in front of a Military Tribunal Comprising of senior British officers. The essence of the prosecution's arguments can be summed up by Advocate General Sir Noshirwn P.Engineer, as the chief prosecutor said in the court. P.E. Engineer opening the prosecution case, said that the accused were Indian commissioned officers owing allegiance to the King and as such they were subject to the Army Act. He said that they (the accused) bound or justified by law in doing what they did cannot avail them. Joining with rebels in an act of rebellion or with enemies in act of hostility makes a man a traitor. An act of treason cannot give any sort of rights not can it exempt a person from criminal responsibility for the subsequent acts. Even if an act is done under a command where the command is traitorous , obedience to that command is also traitorous.[6]

Defence committee was ready for the legal proceeding. It was led by sir Tej Bahadur Sapru and fronted by Lt.Col. Horilal Verma Bar At Law. Litigation started by Chief Defence Counsel Bhulabhai Desai, who was an eminent and experienced Barrister but due to his health issues few proceedings were done by Pt. Jawaharlal Nehru then again it was continued by Bhulabai Desai till the end. Once the prosecution was done making its case. Chief Defence Counsel Bhulabhai Desai took the floor. Over the course of ten hours spread across two days. Desai presented a stirring defence without any interruption or notes, which among other aspects included "probably the first legal argument before

any court in the world which sought to establish the legal right of an enslaved nation to wage a war of national liberation against its foreign ruler.

His argument was that the issues at hand were matters for public international law, not British Indian municipal law. He argued, first that the Indian National Army was a properly constituted and self- governing army, run by Indian officers with its own disciplinary code, ranks , uniforms and regalia, just like the British-run Indian army on which it was closely modelled. It had two aims: the liberation of India from British rule and the protection of Indian Population in Burma and Malaya, especially during the war. So contrary to the prosecution claims, it was not just a Japanese-run Indian Army.He urged that Subhas Chandra Bose had left India in January, 1942 for Kabul from where he had proceeded to Germany via Moscow. When Singapore fell to Japan on 15th February, 1942, Col. Hunt had handed over about 40,000 Indian prisoners of war to the Japanese representative on behalf of the British Government.

This was an accretion of strength to the Indians overseas. They then founded the Indian Independence League which met in conference in Bangkok in June, 1942 and adopted the proposal to form the Indian National. In September, 1942, the Indian National Army was formed under the leadership of Capt. Mohan Singh and it recruited a large number of soldiers from Indian prisoners of war. Differences arose between Capt. Mohan Singh, and japaees so, the army was disbanded in November, 1942 and Capt. Mohan Singh was arrested. That was followed by the formation of the second Indian National Army, by Subhas Chandra Bose. After meeting Premier Tojo in Japan, Subhas Chandra Bose had arrived in Singapore on 2nd July, 1943 and had assumed leadership of the Indian Independence League on 21st October, 1943; The Greater East Asian Conference which was attended by Indians from different parts of the Far Eastern countries was the next event of importance, One of the resolutions of that Conference was that a Provisional Government of Free India should be established. This was followed, on the 21st October, 1943, by a Proclamation establishing a Provisional Government of Free India.[6] The next step was the constitution of that Government by different ministers with different functions who took oaths of allegiance to the Government, Subhas Chandra Bose being the head of the State. That Government, duly constituted, made a declaration of war on Britain and America. On this new State being constituted, the I.N.A. carried out its functions under the orders of the new State. It was recognized by Japan, Germany, Thailand and Manchokia (Axis Powers). Japan agreed to hand over the Andaman and Nicobar Islands to the Provisional Government, and thus the Indian National Army of this new State was properly organized, had its own distinctive badges and emblems and functioned under regularly appointed officers. It had been proved that "some twenty crores of rupees were in fact donated to the State, out of which was maintained the Civil Government and the Army".[7] That Government had, as was shown by the evidence, a Civil and Army Gazette of its own.

Though there were 16 advocates in the court, including Pandit Jawahar Lal Nehru, the defence was led by Bhulabhai J. Desai, whose brilliance in cross – examination was revealed when he submitted, that a state of war existed between the Provisional Government of Indian National Army and the British, and acts done in prosecution of that war had not the consequences which the Crown claims or might have claimed in the case of a private individual. He urged that the evidence led by the prosecution itself showed that, in the case before the Court, there was really a Provisional Government of Free India – a separate new Indian State which was fighting for the liberation of hundreds of thousands of Indian nationals. There being thus a new Indian State with the normal insignia and functions of a State, it was, in International Law, entitled to make war and it did make war for the purpose of liberating India.

He urged that International Law was not static. That law had grown from the time to time with the progress of civilization. It had now reached the stage of recognizing that "If liberty and democracy

are to have any meaning all over the world and not merely just for a part of it…. any war made for the purpose of liberating oneself from the foreign yoke is completely justified by modern International Law." He said: "It will be a travesty of justice if we are to be told, as the result of any decision arrived fight for the freedom of England against Germany, for England against Italy, for England against Japan, and yet a stage may not be reached when a free Indian State may not wish to free itself from any country, including England itself. We maintain that this particular war, according to the decisions, requires no justification.[8]

Bhulabhai Desai brilliantly analyzed the evidence led by the prosecution regarding each case of alleged murder and torture. He forcefully submitted that the evidence was totally irrelevant for the purpose of the case for the reasons that the grounds on which that evidence was attempted to be led were entirely non-existent Desai submitted that It was a settled position in international law that when two government are at war with each other, the combatants acquire the status of belligerents, and the soldiers can not be punished for murder, and other offences under the municipal law. The matter passes from the domain law to that of international law. He urged, I put a very simple question: What about the acts of those who fought on the side of the British in the war? They killed lots of people. Would they be put up before this court under section 302? Most amazing. When there is a war bloodshed, is inevitable so If it has been done by the Indian National Army then how is it suprising.[9] There is no need to put any charges on them on such basis. Desai asked for the evidences from the general advocate p. Noshirwan against the three accused for conducting torture and murder, but he could not prove it effectively. It was a great counter attack by Bulabhai Desai to the opponent party.

Another argument was submitted in regard to the allegiance owed by the forces and other ranks of the Indian army to the king and the country who had joined the I.N.A. In 1942 Indian soldiers were already handed over to the Japanees Government therefore there is no question arise to show their loyalty to the British king. These soldiers, became the part of I.N.A. therefore, though normally said to be fighting against the king were really fighting to liberate their own country. It was argued that the object of the I.N.A. was to fight for the liberation of India, and that they had no other object except the liberation of their country. It was also contended that they were freed from the allegiance owed by them by the events that had happened.The prosecutor had tendered a considerable body of evidence to prove the formation of the Provisional Government of Free India, the raising of armed forces by it, and the putting of those armed forces in the field against the British, Bhulabhai Desai tried to establish on the basis of these facts that the acts done in the course of the operations of the organized army of a government which had obtained the status of statehood, which possessed territories ceded to it by the Japanese Government and other States, which had received plenipotentiary of another State, and which had formally made a declaration of war against Britain and America, could not be questioned, under the rules of International Law.Bulabhai Desai submitted his statements before the pannel.

Thirty witnesses were examined on behalf of the prosecution in support of the charges. They were cross examined by the three accused were recorded. Capt. Shah Nawaz Khan questioned the authority of the court to try him. In his statement he explained how and why he joined the Indian National Army. He He said, "In short, the question before me was the king or the country. I decided to be loyal to my country and gave my word of honour to Netaji that I would sacrifice myself for her sake. We fought only for India's independence. I do not deny having taken part in the fight but I did so as a member of the regular fighting forces of the Provisional Government of Free India who waged war for the liberation of their motherland according to the rules of civilized warfare. I, therefore, committed no offence for which I can be tried by a court martial or by any other court."[10]

Capt. P.K. Sehgal also challenged the authority of the court and said, "I deny being guilty of any of the offences with which I have been charged. I also maintain that my trial by court martial is illegal. I did not join the I.N.A. through any fear of Japanese ill – treatment or from any ulterior or

mercenary motive. I joined the I.N.A. from purely patriotic motives. I joined it because I wanted freedom for my motherland and was ready to shed my blood for it. I committed no offence and have served my country to the best of my ability."[11]

Lt. G.S. Dhillon too challenged the authority of the court to try him. He also narrated how he came to join the I.N.A. and said, "Whatever I did, as the member of a regularly organized force fighting under the Provisional Government of Free India and am, therefore, not liable to be charged with or tried under the Indian Army Act or the criminal law of India for any offence on account of any act done by me in the discharge of my duties as a member of such force. I am further advised that in point of law my trial by court martial is illegal."All the three accused proved that they have joined INA to free their motherland.[12]

The Judge Advocate General P Noshirwan very fairly summed up the case of both the prosecution and the defence for the benefit of the court. It was submitted that all the charges had been proved and the rules of International Law relating to war would not apply in the case of those persons who were officers of the Indian Army owing allegiance to the King. The summing up of the Judge Advocate brought out various legal issues. The accused were charged under Section 41 of the Indian Army Act. The defence submitted that, having regard to the conditions under which the Provisional Government had been formed, and was functioning, it was entitled to make war and did make war, for the purpose of liberating this country. If such a government is held to have a right to make war, a right recognized and accepted by all nations, then according to International Law, two independent countries or two States may wage war on each other, and those who carry out any action in due prosecution of that war, apart from war criminals, are outside the pale of municipal law. It was contended, not answerable before any municipal court for what was done in due prosecution of that war. Despite the stirring defence put forward by Desai and his team, but the court found all three men guilty.

The order and sentence passed by the general court martial and the confirmation by the Auchinleck, Commander – in – Chief who was the confirming authority in the case was announced in a communiqué which was published in the Gazette of India Extraordinary on 3rd January, 1946. The communiqué cited:[13]"Captain Shah Nawaz Khan, Capt, Sehgal and Lt. Dhillon have stood their trial by court martial on charges against all three of waging war against the King Emperor,and the charge of abetment of murder. The Court Martial having pronounced its verdict, that all the three accused have been found guilty and hence they are sentenced to life imprisonment along with of cashiering and forfeiture of arrears of pay and allowances.[14] Auchinleck British Commander-in-Chief made his report to the Viceroy.

The trial did much good in further arousing national consciousness among Indians but did a lot of harm to the cause of the British Empire. The verdict sparked a series of protests throughout the nation. There was unrest in the Indian Army and Navy already because of the red fort trials. An explosive situation was saved by the Auchinleck, The officially pardoned the there officers of INA and Other officers and soldiers who were on trials were released. British commander understood that if these officers were punished, the Indian Army could revolt. The Viceroy used his special power to this release.

Thus ended the great I.N.A. trial which created a new awareness towards full independence throughout the country. But Bhulabhai Desai offered was a remarkable defence with forensic precision, which had a profound impact on the sentence and more importantly, the freedom struggle. Shri Bhulabhai used his penetrating intellect and his persuasive eloquence. No one who reads his speech for the defence can fail to realize that it is an effort worthy of a great and eminent advocate." "The I.N.A. trial has been perhaps the most notable trial in the history of British India; indeed, in some respects it may rank as one of the most notable trials in history. During the red fort trials INA had full sympathy of the public. By the influence of the INA trials the royal navy had revolted and who also received the

support of Indian Army. England who was planning to give Dominion status to India, now the change in atmosphere, and India finally got freedom on August 15th 1947.

References :-

1. M.C. Setalvad, Bulabhai Desai, Ministary Of Information and Broadcastig, Govt. Of India, New Delhi,1981, P 307, Jawahar lal Nahru, Frank Moraes, New York, 1956, P 311.
2. Bhulalal Desai :I.N.A. Defence, Congress, Publication Board,Bombay,1946. P 126.
3. M.C. Setalvad, Bulabhai Desai, Ministary Of Information and Broadcastig, Govt. Of India, New Delhi,1981, P 308, Gauaba, K.L.: Famous Historical Trials, Delhi, 1972.
4. Auhinleck, John Connell,Cassell, London,1959 P 794. M.C. Setalvad, Bulabhai Desai, Ministary Of Information and Broadcastig, Govt. Of India, New Delhi,1981, P 315
5. R.C. Majumdar, History of the Freedom Movement in India, Volume lll Calcutta, 1963, p 721-22, , Moti Ram : I.N.A. Trial (Complete Transcript), Delhi, 1946.p 136.
6. M.C. Setalvad, Bulabhai Desai, Ministary Of Information and Broadcastig, Govt. Of India, New Delhi,1981, P 179.
7. M.C. Setalvad, Bulabhai Desai, Ministary Of Information and Broadcastig, Govt. Of India, New Delhi,1981, P 321.
8. B.R. Agrawal, Trials of Independence, National Book Trust India, (1858-1946),1984, P164, Moti Ram : I.N.A. Trial (Complete Transcript), Delhi, 1946.p 155.
9. INA Defence,Bulabhai Desai, I.N.A Defence Committee, Delhi Printing works, Delhi, 1945, P 82
10. B.R. Agrawal, Trials of Independence, National Book Trust India, (1858-1946), 1984, P 161, Khan, Shah Nawaz: My Memories of I.N.A. and It's Netaji, Delhi, 1946, P. 233.
11. Ibid, P. 161, Khan, Shah Nawaz: My Memories of I.N.A. and It's Netaji, Delhi, 1946 .P 234.
12. Ibid, P. 161, Ibid, P. 234.
13. M.C. Setalvad, Bulabhai Desai, Ministary Of Information and Broadcastig, Govt. Of India, New Delhi,1981, P 331. Noorani, A.G.: Indian Political Trials, New Delhi, 1978. B.R. Agrawal, Trials of Independence, National Book Trust India, (1858-1946), 1984, P 167.
14. Auhinleck, John Connell,Cassell, London,1959 P 794.L.P. Sharma, History of Modern India, Konark Publishers PVT LTD New Delhi, 344-345.

Traditional Medicinal Plants used in Sports Injuries

Pushkar Singh Bisht*

Introduction :- The Himalayas have a vast treasure trove of traditional medicinal plants, Pithoragarh has been instrumental in the primary health care system amongst the local people and sportspersons of the Himalayan region. The local people here have a very rich knowledge of medicinal plants which are in use from the epic period mentioned in "**Ramayan**" and "**Mahabharata**" "Rigveda". Due to its remote area and few features of the modern medical system, traditional medicine is increasingly being used to treat and treat sports injuries. Of the 15,000 species of flowering plants found in India, about 17% have medicinal value, and most of them are found in the Himalayan region. People of this region mostly depend on forests for their fruit, food, fodder, fuel and especially traditional medicine which they get from Herbs, Shrubs, Climbers, Rhizome and Trees which are found in this region. The World Health Organization suggests that around 80% of the world's people rely on traditional medicine for their primary health care needs, with significant economic benefits. Medicinal plants are used in the development of indigenous medicines and for the treatment of various diseases.

Topography or Geography of Uttarakhand and Pithoragarh District-Uttarakhand came into existence on 9 November 2000 as the 27th State of the republic of India. Uttarakhand is situated in the northern region of the Himalayas and has an international border with China and Nepal on the northwest lies Himachal Pradesh and in the south Uttar Pradesh. Its area is 53483 square kilometres. It is situated between 280 53-, 24"-310 and 27- 50" North and 770 34' 27" - 810 02 22-E. About 47325 sq km of its geographical area is covered by mountains in Uttarakhand. It has 13 There are districts and it is divided into two regions Kumaon and Garhwal. Garhwal region includes seven districts while the Kumaon region comprises 6 districts, Pithoragarh is one of them, it is also known as the Eastern Himalayan district of Uttarakhand.

Pithoragarh is ecologically very rich with diverse flora and fauna, it is also known as the "Soar Valley" of Uttarakhand. The geographical area of Pithoragarh is 7100 sq. km. km. Pithoragarh city is situated at an altitude of 1645 meters. Pithoragarh district is situated between 290 4” to 3003” North latitude and 800 to 810 East longitude above sea level. The Tibetan plateau lies to the north and Nepal lies to the east. The Kali River forms the eastern boundary between Nepal and India.

Pithoragarh district is administratively divided into five tehsils: Munsiyari, Dharchula, Didihat, Gangolihat and Pithoragarh. The northern mountainous region is covered with dense forests, especially on the northern slopes at an altitude of about 14000 feet. Most of essential and specialized plants can easily grow at this height. These areas are often used by farmers to grow traditional medicinal plants.

There were 964 species of medicinal plants, which are found in the Uttarakhand region. It has medicinal value for the people (Chandra Prakash Kala 2015). Sportsmen also use these traditional medicines. The social structure of the Pithoragarh region is traditional and culturally sporting. A lot of players who have represented India at the international level and won a lot of medals for India are from this hilly region. The people of this region play a variety of recreational, professional, traditional, cultural, adventure sports and sports such as football, boxing, athletics, mountaineering and other adventure and traditional sports. Due to the remote location, most of these athletes have to use or consume traditional herbal medicines for treatment, healing, and rehabilitation.

Methodology: The data was collected primarily through the website of the State Medicine Plant Board of Uttarakhand and secondary sources from the Forest Department of Uttarakhand. References were taken from articles research papers, and books for interpretation of data.

***Associate Professor, Physical Education, L.S.M. Govt. P.G. College Pithoragarh**

S.N.	Local Name	Botanical Name	Parts used	used in sickness & injuries (Disease)
1	Dolu	Rheum emodi	Whole Plant	Sprain, Strain, Fracture (Simple), blood purification
2	Satawari	Asparagus Racemosus	Roots	Energy Tonic, Imunite Tonic, Weakness, Anemia
3	Lasuna	Allium Sativum	Bulb	Asthma, Arthritis and cold
4	Gandharyan	Anjalica Species	Whole Plant	Abdominal Problems
5	Bael	Aegle Marmelos	Fruits, Roots, Bark	Energy tonic, digestion, Skin disease, Heatstroke
6	Neem	Azadirachta indica	Leaves, wood, bark, fruit,	Skin disease, Heatstroke, blood purifier, liver disorder
7	Jal Birami	Bacopamonnieri	Whole Plant	Mental Alertness
8	Koeral	Bauhini Variegata	Flower	In digestion and Abdominal Problems
9	Silpara	Vergenialigulata	Rhizomes	Stone Problems
10	Devdar	Cedrus deodars	wood oil and barks	Massage oil
11	Tejpatta	Cinnamomum tamala	Leaves, bark	Antibiotics, Anemia, Malnutrition
12	Dalchini	Cinnamomum Zeylanicum	Bark	Antibiotics, Anemia
13	Dhaniya	Coriandrum Sativum	Fruits	Liver disorder
14	Zeera	Cuminum Cyminum	Fruit	Liver disorder
15	Dhatura	Datura Stramonium L	Leaves, flowering tops and seeds	Asthma, Pain Killer, cold
16	Genthi	Dioscorea Bulbifera L	Roots	Weakness, Energy, bone Problems, massage oil, digestion
17	Bhringraja	Eclipta prostrata L	Whole Plant	Lever disorder, Mental Alertness, hair growth
18	Amla	Emblica officinalis gaertn	Fruits	Digestion, Skin disease, Eye disease, teeth infection
19	Lyptus	Eucalyptus globules labill	leaf, barks and oil	Headache, painkiller, balm, Chest conjunction, cold
20	Jamun	Eugenia Jambolana. Lam	Fruits, bark	Liver disorder, Multi-Vitamins
21	Kutuki	Gentiana Tenella	Fruits	Hysteria, Weakness, Fever
22	Darim	Punica granatum, Linn	Skull of fruit	As a antimicrobials
23	Haldu	Abina cordifolia	Bud and leaf	wound and fever
24	Pangar	Aeculus Indica	fruit	In stomach problem
25	Banmethi	Melilotus Alba, Lamk	Whole Plant	In stomach problems and indigestion
26	Chalmori	G. Pretense, linn	Whole Plant	In fever, Urine Problem, Eye Problem
27	Pudina	Mentha arbensis, Linn	Whole Plant	Digestion, Weakness
28	Tulsi	Ocimum sanctum	Whole Plant	In fever, cough and cold
29	Bethuwa	Chenopodium album	leaf and seed	for worm
30	Pipal	Piper longum	fruit	In low appetite and massage oil

31	Banj	Acorus calamus	root	Fever and pain
32	Jambu	Allium stracheyi	Whole Plant	In stomach problem
33	Sisauna	Urtica dioica	Leaf	Skin disease and pain killer, Lactation
34	Kilmori	Berberis aristata	Whole Plant	Sugar, Fever and weakness
35	Khair	Acacia catechu	Stem	In urine Problems and dysentery
36	Muleti	Glycyrrhiza glabra	Stem and root	cough and cold
37	Banhaldi	Hedychium spicatum	rhizomes	Pain killer
38	Akhrot	Juglans regia L.	whole Plant	Rich Protein, teeth Problem
39	Kauch	Mucum pruriens	root and hairs on pods	Strength Tonic
40	Kaphal	Myrica esculenta ham	Fruit	Digestion
41	Baljari	Onosma bractatum	root	cough and cold, hair loss
42	Chir	Pinnus roxburghii sarg	resin	sprain, strain pain killer
43	Arandi	Ricinus communis L.	whole plant	Injuries, massage and pain killer oil.
44	Palak	Spinacia oleracea	leaves	Anaemia, weakness
45	Kanthkari	Solanum surattense burm F.	whole plant	sprain, strain, Hair line fracture
46	Harrd	Terminalia chebula	Fruits	cough and cold, digestion, liver problems
47	Giloy	Tinspora cardifolia	stem	sugar problems, Dengu, cough, bone deformities
48	Aswagandha	Withania somnifera	roots	liver problems, weakness
49	Timur	Zanthoxylum armatum	Whole Plant	weakness, liver problems, digestion, teeth problems, cold and cough

Conclusion - The people of Uttarakhand Himalayas especially the people of the Pithoragarh region have a close relationship with their nature. They are completely dependent on the forest for their health care such as fruits, food, fuel, food and medicinal plants. The local people and sportspersons of this region use these medicinal plants for health and believe that they are easily available, low cost and have no side effects.

References :-

1. Ram Prakash, Traditional uses of medicinal plants in Uttarakhand Himalayan region, Scholar Academic Journal of Biosciences 2014;2(5):345-353
2. Rakhi Rawat and D.P. Vashistha, Common Herbal Plant in Uttarkhand used in the popular medicinal Preparation in Ayurveda, International Journal of Pharmacognosy and Phytochemical Research 2011;3(3):64-73, ISSN:0975 4873.
3. https:/en.wikipedia.org/wike/pithoragarh_district.
4. Afroz Alam, Vinay Sharma, S.C. Sharma and Abhishek Tripathi- Bryoflora of Munsyari and Dharchula Tehsil of Pithoragarh Uttarakhand, Western Himalayas, India, Archive for Bryology 140(2012).
5. Nadkarni AK; Indian Materea medica. Vol. 1 (3rdend), 1954; Popular Book Depot, bombay
6. Pei SJ; Ethnobotanical approaches of traditional medicine studies: Some experiences from Asia Pharmaceut. Bio, 2001; 39:74-79.
7. Bentley R, Trimen H; Medicinal Plants. Vols-IV (repr. Edn). 1980; International Book Distributor Dehradun.

Feminism in the Evolution of Patriarchy and the Nature of Patriarchy in India

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal*
Dr. Deepti Bagwari**

Abstract-Purpose :- This paper aims to review the existing condition on the effects of the Patriarchy on gender especially on females to determine whether patriarchy has undermined the status, condition, and progress of women or has provided opportunities for reducing gender discrimination.

Design/Methodology/Approach :- The authors reviewed the literature on the effects of feminism on patriarchy and gender disparity, focusing on the key difference between patriarchy and feminism which mainly treatment of women. In patriarchy, women face oppression and discrimination whereas, in feminism, women have equal rights to men. Patriarchy is a system of society or government in which men hold power and women are largely excluded from it.

Findings :- The so-called patriarchy has generally created challenges for women's advancement and progress. Patriarchy; is a hypothetical social system in which the father or a male elder has absolute authority over the family group. For an instance, in a patriarchal society, men hold control and make all the rules whereas women stay home and care for the kids. An example of patriarchy is the family name comes from the man in the family. Moreover, feminism is defined as the belief in the social, political, and economic equality of the sexes. The aim of feminism is to challenge the systemic inequalities women face on a daily basis.

Research Limitations/Implications :- Patriarchy and feminism both still exist in society as their own space. Despite the progress made by Indian feminist movements, women living in modern India, still facing many issues of discrimination. There is no question that we still live in a patriarchal system, because not only is the gender inequity still so stark, despite laws to the contrary, but the dominance hierarchy aspect is near full effect.

Originality/Value :- To the best of the author's knowledge, this is the scholarly review of the literature on the potential effects of patriarchy on gender disparity and feminism is the antidote to patriarchy.

Keywords :- Patriarchy, Gender, Discrimination, Oppression, Women's advancement, Hypothetical, feminism, Gender inequity, Gender disparity, and Dominance hierarchy.

Paper Type :- Conceptual Paper.

Patriarchy is now defined as "a system of social structures and actions in which men dominate women as well as exploit and oppress them." According to Gerda Lerner, "patriarchy is an expression of institutionalization of the domination of men over women and children in the family and an extension of the social domination of men over women in general." She also says that this does not mean that women are completely powerless or completely deprived of rights, influence, and resources. The special thing about this system is its ideology, under which the idea that men are superior to women and that men have or should have control over women.(Gerda, 1986) In this system, women are seen as the property of men. There are many inequalities in our society. Inequality between men and women is one of them. Generally, patriarchy is used to express this inequality. As such it is so

***Asst Prof History, VSKC Rajkiya Snattkottar Mahavidhyalaya, Dakpathar, Dehradun, Uttarakhand.**
**** Asst Prof. English, VSKC Rajkiya Snattkottar Mahavidhyalaya, Dakpathar, Dehradun, Uttarakhand.**

ingrained in our institution that it may seem futile to define it. But trying to define it continues. There has also been a difference of opinion among feminists regarding its definition.

There are some feminists who consider its use useless. One of the reasons for this is the meaning in which the word patriarchy itself was being used earlier. The second reason is the background in which the term began to be used for the subordinate position of a woman. These reasons are further considered. Patriarchy is one special system in which men have primary power i.e. they are considered high in the society. In the roles of political leadership, moral authority, and social respect, control of property prevails. Family in the field of Father or other men exerts authority over women and children. In this system, men and women have to walk according to the tasks given by society. Religion, society, and orthodox traditions make patriarchy more powerful. For centuries women have been oppressed because of patriarchy.

Now the question arises what is Patriarchy? :- It's a social organization marked by the supremacy of the father in the clam or family, the legal dependence of wives and children, and the reckoning of descent and inheritance in the male line. In English, the Patriarchy word is formed by combining two Greek words Pater and Arche. Pater means – Father and Arche mean – Rule. That is, 'the rule of the father.' Peter Laslett, in his book 'The World We Lost', has described the first feature of the family system of pre-industrialized English society as being patriarchal. This type of family system (joint family) remained in India for many years after independence.

It is said that the arrangement with family is being used to make it clear that generally only a couple of husband and wife and children were counted as members of the family but also grandparents, uncles, aunts, nephews, niece, servants, etc. all used to come under this purview. The family system was not only a unit of production but also a social unit. The father or the eldest man had absolute rights over property and all other members, whether they were men or women. This right was passed on from generation to generation from one man to another under fixed rules of succession. Outside the family, the king was considered to be the praja-palak (father). Indian society has always accepted the rule of the father, even Aryan society has always accepted the rule of the father.

There are different types of families, but patriarchy prevails in all types of families. The sexual relationship of adults in the family is a socially accepted one. Types of families: (1) Nuclear family and joint family. The nuclear family is a family consisting mostly of only three or four people, parents, and their children. It focuses on married couples. Nowadays single parent is also considered a nuclear family. The term nuclear family first appeared in the 20th century. Joint families have been prevalent for centuries. Many people are part of two nuclear families in their life, one nuclear family in which they are born and the other in which they get married and settle down. (2) With the emergence of proto-industrialization and early capitalism, the nuclear family became an economically viable social unit. Live with father and sometimes brothers and sisters. A joint family is a tradition in India. The joint family is still present in many parts of the country. In all the villages except the big cities and in all the small towns only a joint family exists. Such families are headed by a patriarch. That man makes all the decisions. Family income is under their control. The patriarch's wife is capable of making family decisions. Due to urbanization and economic development, joint families are decreasing in India. (3) Sometimes people of several generations are found living together in the same family. In some societies, joint families are considered superior to nuclear families because there is a greater sense of togetherness in these families, and at the same time cultural rules and values are propagated in a better way. In joint families, family ties are given more importance than marital relations. A joint family is usually headed by a patriarch (the eldest male). This system is called patriarchy. In such houses the male is dominant; he takes care of the family. Expressions of patriarchy are less common in nuclear families than in joint families.

The physical basis of patriarchy:- Its ideology has been considered important to understand how patriarchy works as a system. The main aspect of the system of patriarchy as an ideology is to create consent among women. Under this, women help to maintain the patriarchy, because through socialization she herself assimilates male domination and gives her consent to it. This consent of theirs is achieved in a number of ways – such as their lack of access to productive resources and their economic dependence on the head of the family. In this way, through different methods, women are made to get their consent in patriarchy. On this basis, it becomes necessary to understand that patriarchy is not just an ideological system but also has a physical basis.

Patriarchy deprives women of the means of power and domination, their consent is easily achieved and when women start living life on the behest of patriarchy, they start getting class facilities and are also awarded honor and respect, on the other hand, women who do not give their co-operation or consent to the laws and practices of patriarchy, they are labeled as evil and evicted from the property and facilities of their men. This way of working of patriarchy first divides women into two different camps ('good'- which supports patriarchy and 'bad' – which does not consent to patriarchy) by dividing them into a never-ending relationship, which begins the game of the competition. In all regions of the world, women are more likely to head single-parent families than men are (ILO, 2018). Time-diary studies in the USA indicate that even when fathers are single parents, they continue to do less childcare and work more hours than single mothers because single fathers more often share their residence with family members or other adults who can share domestic responsibilities (Lee and Hofferth, 2017 & Sayer et al. 2004).

Types of paternal authority:- Brahmanical patriarchy – Brahmins explain religion and on the contrary, religion does not accept the independent existence of women. The girl should first be under the protection of the father, then the husband, and then the sons. Writer Uma Chakraborty in her articles 'Conceptualizing Brahmanical Patriarchy in India' describes "the practice of controlling women and their sexuality through various beliefs and traditions existing in the upper castes as 'Brahmanical patriarchy" pp 579-785. Whenever we analyze issues related to gender equality or women's rights, some such words or concepts are mentioned in them without understanding which we cannot understand these problems. One of these is patriarchy. We can easily find this in any women-related issues, but what is it really…? An important aspect of the women's movement and the feminist discourse that has emerged from it around the world in the search for tools and theories for analysis by which to understand gender discrimination in general and the subjugation of women in particular. Almost the first task of feminist discourse was to identify the complex structure of subjugation of women and to give it an appropriate name. Thus, from the mid-eighties of the twentieth century, feminist experts began to use and define the term patriarchy. This is from the seventies, when women also participated in large numbers in the protests against the Vietnam War in America and in the movements for civil rights. Those women found that the behavior of fellow men who spoke loudly of peace, justice, and equality in the movement was no different from that of ordinary men. These were women who did not want to be confined to the traditional roles that had been set for them. She was talking about uprooting stereotypes about sexual morality. But her assertiveness could not be digested by men. Not only have they pushed aside, but the leadership of the organization, holding the flag of the anti-Vietnam War campaign, told them that women should follow men in the movement. In other words, they were also taking her as an object of enjoyment and a follower, while those women thought that the mentality of the men who campaigned against exploitation and injustice would have changed, at least in the movement. They will consider them equal to themselves. From the bitter experience there, she concluded that whether at home or outside, men are in the form of exploiters and women as oppressed objects. Radical feminism flourished in the above historical background, first of all by Kate Millet, sexual politics expressed systematically. She was the first to use patriarchy to refer to a position of power between man and woman. Her intention behind doing this was to show that she has an

autonomous existence and that the second position of the woman is systematic. In this way, Millet's father's rule of the word used in the sense of male power was transformed by using it in the sense of. Underlining the secondary status of women as a system by Millet was a matter of great importance for both, feminist thought and the movement, prior to that, there was a belief that the subjugation of women was not a system in itself but a part of capitalism or any other similar system. It needs to be noted here that Millet had carved only the form of patriarchy. She could not suggest any concrete basis for this i.e. why there is patriarchy, why the position of women is second, why are men in the position of authority? etc. She left these questions unanswered.

After Millet, radical feminist Schulmith Firestone, the dialectic of sex said, "I completed the work left unfinished by Millet" pp 1-7. Firstly**,** he proved patriarchy as the central structure. For this, he corrected the materialistic interpretation of the history of Marx-Engels. According to Firestone, Marx-Engels saw class, class struggle, contradiction, and exploitation as confined only to the economic realm. Other contradictions he saw as secondary and therefore self-dissolving with the dissolution of the economic class. Firestone proposed that the major conflicts and conflicts in history have not been between workers on the economic plane and those who owned or controlled the means of production. He replaced the economic class, and sex class using the word, human society is basically divided into male class and female class, and human history is mainly declared to be the history of contradiction and struggle between them. He claimed that the only true and real revolution would be a revolution on the lines of his new materialistic interpretation of history. For such a revolution, Firestone considered it necessary to outline the reasons which have been responsible for the secondary status of women. The reasons he enumerated while discovering her subordination in the physical structure of the woman are as follows:-

> "A woman's ability to conceive and give birth to a child;
> The compulsion to depend on men during pregnancy;
> Dependence on long-term care of the human infant;
> During this long period, the psychological feelings developed between
> mother and child and due to this fertility of his ability,
> he is bound by Certain types of labor." pp 1-7.

Since it all takes place within the confines of the traditional family structures, the first step in the revolution that Firestone was talking about was, according to him, the dismantling of this family structure. The second measure showed them the development of techniques such as artificial insemination and contraception. They felt that it would free women from the inevitability of reproduction and unwanted pregnancies. The third measure he suggested was that society would have to take the responsibility for taking care of the child.

Brahmanical Patriarchal society in India:- Indian society under the system of patriarchy i.e. Brahmanical patriarchal is called society because the society here is based on the caste system. The peculiarity of the patriarchal system has been that it treats every member of the society as equal and not equal, high or low. In this way, the patriarchal system has always been contrary to democratic values. In this, human dignity has been considered above all by adopting the principle of 'one person, one vote' above distinctions like caste, gender, varna, class, and religion.

Where is patriarchy in the everyday life of women? :- In one Patriarchal society women, every moment is exposed to different forms of patriarchy. Now whether it is a matter of discrimination on various grounds or an unreasonable reduction in freedom and a huge reduction in facilities – all these are aspects of patriarchy. Women are second-class citizens in a patriarchy where on one hand they have to take care of more and more household chores, on the other hand, their influence and respect in the domestic system are equally low. Along with economic exploitation, they also have to be subjected to social and cultural subjugation, oppression, and exploitation.

The forms of patriarchy change according to the woman:- Women irrespective of caste or class, patriarchy equally makes their life difficult. For example, if a woman is not a worker, then more and more domestic work will be done by her. On the other hand, if the woman is working, then she will be pressured to earn more and more money. Here the exploitation happens to both the women, just their methods are different. At the same time, the methods of exploitation and suppression of patriarchy change according to the particular class, caste, religion, nation, or tribe women belong to. According to Aguiar and Hurst, "It is true that men have increased their investment in time with children, but so have women. Even though more women in Europe, the USA, and Australia are employed them in the past, they now devote more time to one-on-one interactions with their children than they did historically. (Aguiar and Hurst, 2007; and Gauthier et. al., 2004). Also, "Women more often provide unpaid care for elderly relatives" (ILO, 2018; OECD, 2020).

Conclusion:- To Sum up, the paper discloses that women were never allowed to have the freedom to do the things they wanted to do without permission from their husbands because they were supposed to be obedient and listen to every order, despite their own personal views and values. Due to this unjust treatment of women, society evolved to possess a notion that women and men cannot be equal until women gain the same education, work, status, and socioeconomic background as men. These all aspects come under feminism. Now the question is what is the Patriarchal system and how does feminism take over Patriarchy. Men are concerned with identification, strong work ethic, and competitiveness. Each of these qualities contributes to male identification in a patriarchal system. If we want to make genders equal we have to do some efforts. Like what do young women in 21st century India wants? The answer is simple, only a few insignificant things like fundamental rights, equal pay, claiming space, freedom to wear, freedom to partner, and especially marrying who they like or not marry if they don't like. Women want to be accepted for and not despite their gender identity. Most of the time women want to smash the patriarchy and do it too, in the everyday actions they perform. Sindhu Rajasekaran's book, "Smashing the Patriarchy: A Guide for the 21st Century Indian Woman, is an attempt at studying the challenges that women confront on daily basis. So, in nutshell, any movement/ideology/struggle that needs to stay relevant must necessarily re-invent itself.

Reference:-

1. Aguiar, M. and Hurst, E. (2007), "Measuring trends in leisure: the allocation of time over the decades," The Quarterly Journal of Economics, VOl. 122 No. 3, pp. 969-1006.
2. Chakraborty, Uma: "Conceptualizing Brahmanical Patriarchy in Early India, Caste, Class & State, Economic & Political Weekly," Vol 28, Issue No 14, 03 April 1993 (page: 579-785).
3. Firestone, Schulmith: The Women's Right Movement in the U.S: A New View: Notes from the first year, New York, June 1968 (Page: 1-7).
4. ILO. (2018), "Care work and care jobs for the future of decent work," Geneva, available at: www.ilo.org/global/publications/books/WCMS-633135/lang-en/index.htm
5. Lee, Y. and Hofferth, S.L. (2017), "Care differences in single parents' living arrangements and child care time," Journal of Child and Family Studies, Vol. 26 No. 12, pp. 3439-3451.
6. Lerner, Gerda: The Creation of Patriarchy, Oxford University Press, New York, Oxford (1986).
7. OECD (2020), "Women at the core of the fight against COVID-19 Crisis", OECD Publishing, Paris, available at: www.oecd.org/coronavirus/policy-responses/womem-at-the-core-of-the-fight-against-covid-19crisis-553a8269/?mod=article_inline#section-dle418
8. Sindhu, Rajeshkaran : Smashing The Patriarchy-A Guide for the 21st Century India Woman, Aleph Book company, New Delhi, November 2021, ISBN- 9789390652884

A Study on The Changes in the Livelihood of Street Food Hawkers of Bhopal & Different Income Opportunity Created During the Covid – 19

Satish Singh*
Ashis Behera**
Avnish Pandey***

Abstract: Covid-19 pandemic has mostly affected the hospitality industry and the people related to it. Starting form a small street vendor to star category hotel and restaurant faced a huge loss in their business and some were shutdown. It has lead to a global unemployment in all the sectors .This research gives a overview how the COVID 19 pandemic affected the business of food hawkers in India (Bhopal) and also tells about the different source of income that is generated by the food hawkers to sustain their livelihood during the various unlock periods of Covid 19 along with the various difficulties they faced due the lockdown effect. For the study 100 food hawkers were interviewed from Bhopal. Primary data was obtained using a semi-formal interview with a semi structured questionnaire with the food hawkers of Maharana Pratap Nagar of Bhopal. The findings show the variance in the income level before and during the COVID 19 pandemic along with its effect on their livelihood and how they sustained their livelihood during the covid period. It also presents the different skills which they have explored for their livelihood during Covid and its implication for future.

Keywords: COVID 19, Food Hawkers, Income, Challenges, Bhopal.

Introduction: Street vendors are ubiquitous across the world and throughout history. They are part of almost any distribution chain, and play an important role in the marketing of consumer goods particularly to poorer customers. Focusing on the food trades, this multi-disciplinary volume explores the dynamics of street selling and its impact on society.(Melissa Calaresu, Danielle van den Heuvel Routledge, 2016) At present market India has about 1377+ hotels in star category and 70,00,000+ restaurants in organized category and 2,30,00,000+ crore restaurants in unorganized sector, says this apex body of Indian hospitality industry. But the street food of India drives the mood of the people to another level. The biggest reason that we all loves to eat street food is that it's way more economical or cheap than the food of Restaurants/Hotels. Street Food is very economical for the middle-class people and that's why the major chunk of that class prefers street food the most. Though we will get the same food in a star category restaurants or any other restaurants but the taste differs a lot. That's why street food has a different gentility in them. This study shows the impact of the pandemic on the life of food hawkers. How their business got hit in this critical situation. The challenges they fought with their families to survive in the today's world where oil cost Rs 215/litre. During this study we personally meet with the food hawkers and collected the data. The problems we heard from them was much more worse than the graphs. Some of them were not able to have a single meal in a day. Someone's whole family starting from a 12 years kid to a 70 years old women started earning so that they can have 2 meals a day and run their livelihood.

*** Lecturer, IHM Ahmedabad.**
**** B.sc student, IHM Ahmedabad.**
*****B.Sc Student, IHM Ahmedabad.**

Literature Review :- According to Sonu R. Meher, Alok Ranjan, Parul Shukla, Yogita Atram, the widest lockdown ever imposed in the history of India has led to a devastating impact on the lives of daily wage earners in terms of lost livelihoods, shortage of food and accommodation. The major impact has occurred to the employment activities. Since most of these workers are migrants, several had been left stranded on the streets. Even though the government in its endeavors has launched employment schemes for those who have lost their occupation during the nationwide lockdown, the only hope that the intended relief brings these workers out of their prolonged distress and misery fairly. Nitya Maniktala and Tanisha Jain says that "the arrival of COVID-19 exacerbated the problems which the street vendors were facing. With the nationwide lockdown in place, their sales have plummeted. Most of these street vendors now have a hand-to-mouth existence and don't have enough savings for their survival without practicing their livelihoods. The PM SVANIDHI scheme is an attempt to counter such uncertain times. The credit-based scheme aims to revive their livelihoods. But, given the face pace of infections and no medical safeguard in place, the street vendors are forced to assume normalcy and earn their bread by putting their health at risk. In normalcy or during a pandemic, it is vital for the beneficiaries to be aware of the safeguards they are provided by the state. However, there is a growing need for the intricacies of laws and schemes to be simplified for its beneficiaries so that they can have optimal access to the incentives that such public policies entail." Dr. Shilpa Sharma and Shweta Sharma stated that most of the street vendors did not understand and were not aware of the programs which are introduced by the government for the street vendors, which can be used to make the most benefit out of it. The street vendors had not received enough monetary help which was the most needed by the street vendors during and after the period of lockdown as they had no earning, but somehow even that they managed to survive by utilizing their lifelong saving or borrowing from the private money lenders at an exceedingly high interest rate

Objectives

1. To identify the problems faced by the hawkers for their livelihood during COVID19
2. To compare the changes in their income level before and during Covid 19
3. To study the alternatives created to generate income & sustain their livelihood during COVID-19.

Methodology

Sample – 25 Hawkers

Primary Data - Semi Formal Interview Semi structured questionnaire.

Secondary Data- Research Paper & Websites.

This study has been conducted on 25 food hawkers with people of age from 18 to 49 & above of Maharana Pratap Nagar of Bhopal to understand their hardships, income level and other sources created.

Analysis

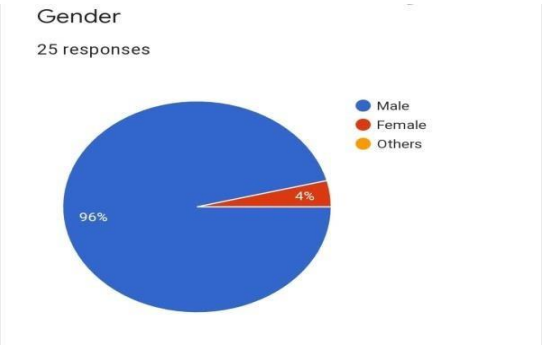

From our survey we got to know that our 96% participants were male and other 4% were female.

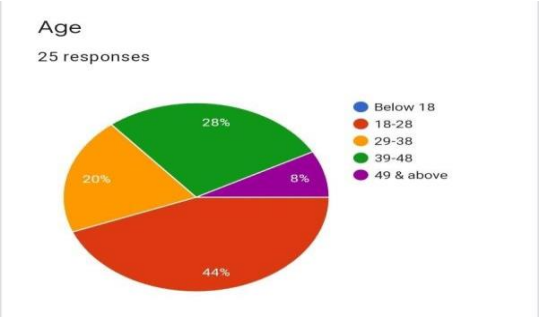

The survey was conducted among the participants of MAHARA PRATAP NAGAR of BHOPAL. Among those participants, 44% were from age group 18-28 years, 28% were fromage group 39-48 years, 20% were from age group 29-38 and 8% were from age group 49 & above at the time of survey.

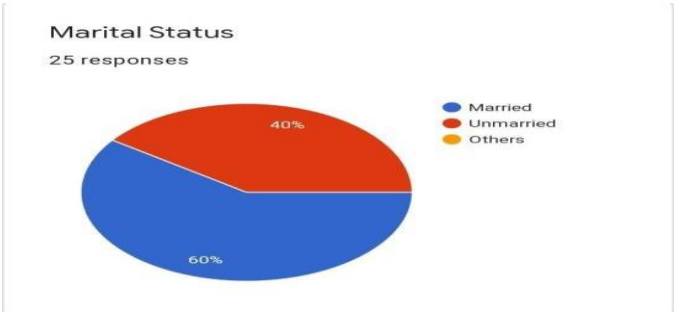

Also, among those participants, 60% were married and 40% were unmarried.

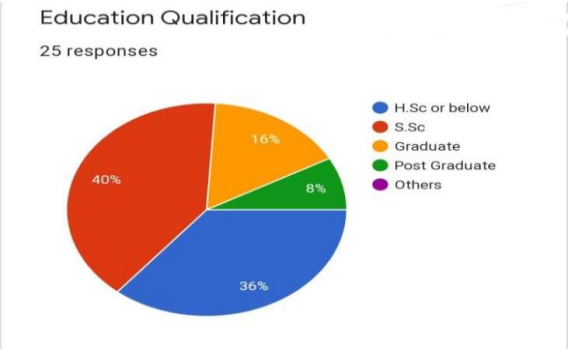

On the basis of educational qualification, 40% of our participants were S.Sc qualified, 36% were H.Sc qualified, 16% were of graduate level and 8% were of post graduate level.

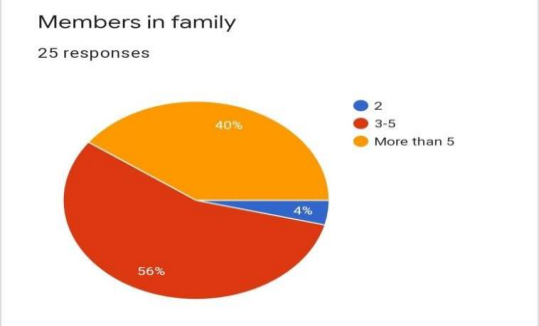

56% participants from our survey have a family of 3-5 members, 40% of them have more than 5 members and 4 % of them only have 2 members in their family.

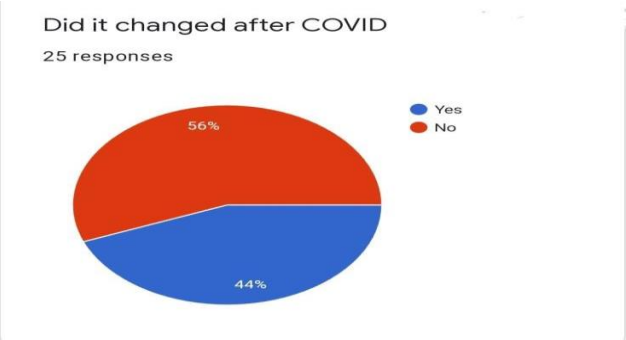

According to our survey we found that 44% our participant had changed their business after COVID and 56% out of them had decided to continue their previous business.

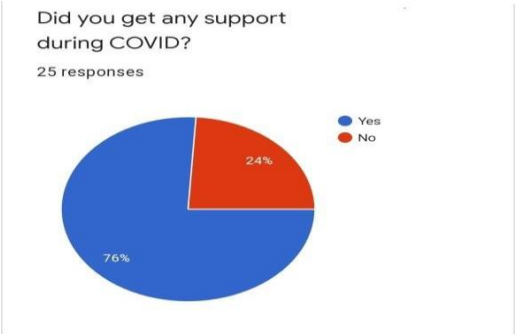

We got to know that 76% of total participants received some help from different sources.

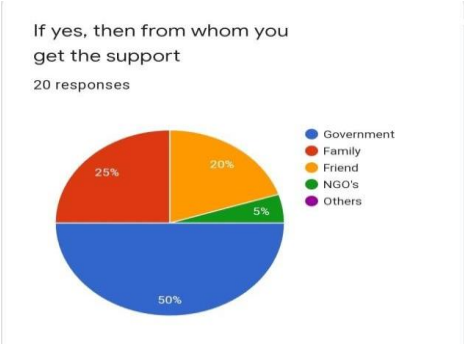

- During our survey we found that 50% of our participant got some help from Indian government in terms of money and ration.
- 25% of them got support from their family.
- 20% of them got support from their friends.
- 5% of them got support from the local NGO’s

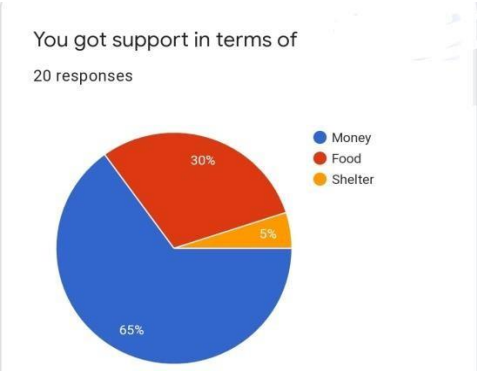

In our survey we observed that 52% of our participant use to live in rented house and remaining participant owned the house that is 48%.

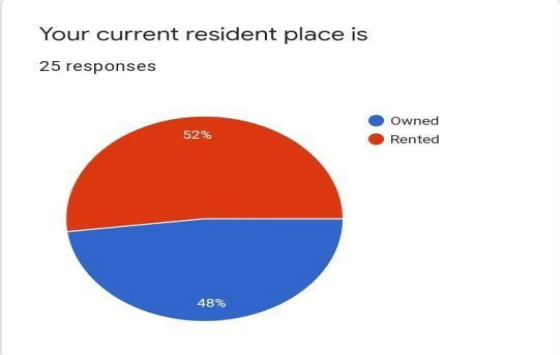

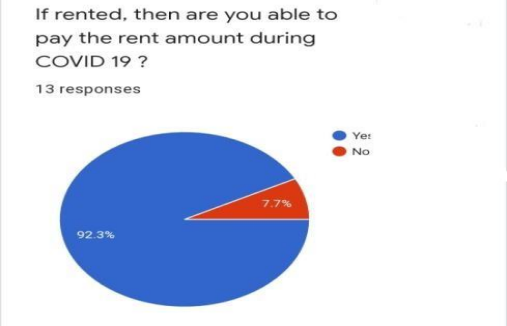

Food hawkers who use to live in rented house so out of them 92.3% of them were able to pay the rent amount and the rest 7.7% were not able to pay the room rent due to low income during

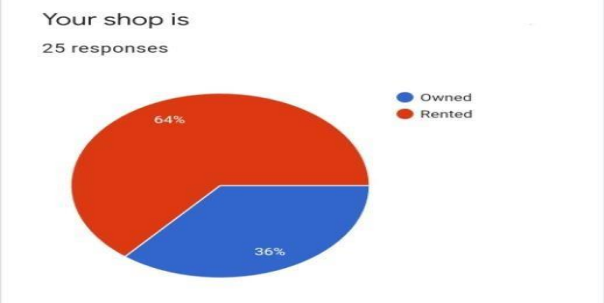

COVID-19.

In our survey we observed that 64% of our participant have rented shop and remaining participant owned the shop that is 36%.

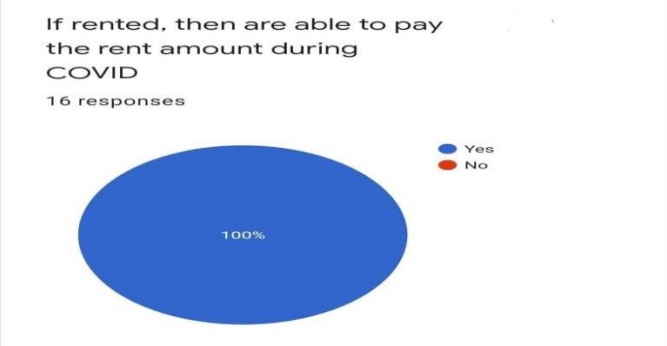

Food hawkers who use to have rented shops were able to pay the rent.

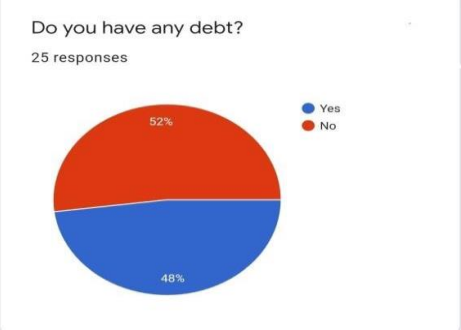

According to our survey we found that 52% of our participant were having debts fromtheir family, friend and some other sources due to low income level during COVID-19.

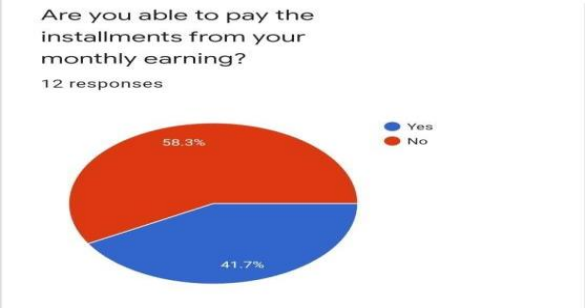

Out of 52% of our participant only 41.7% of them were able to pay the installments from their monthly income and the majority of them were unable to pay the installments (58.3%)

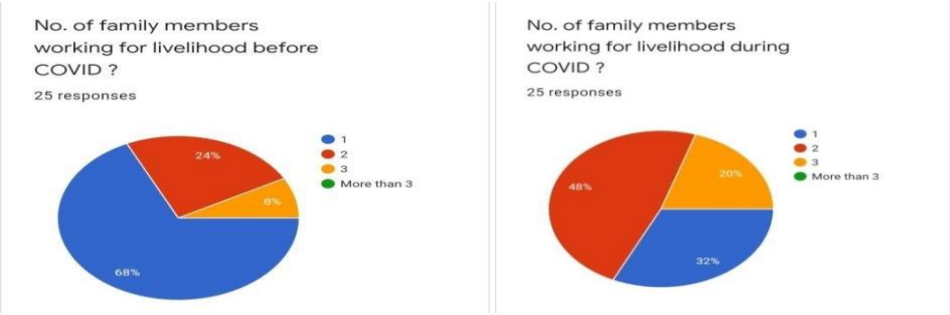

During our survey we got to know that the family members working for livelihood ineach family increased due to low income and increased rate of commodities.

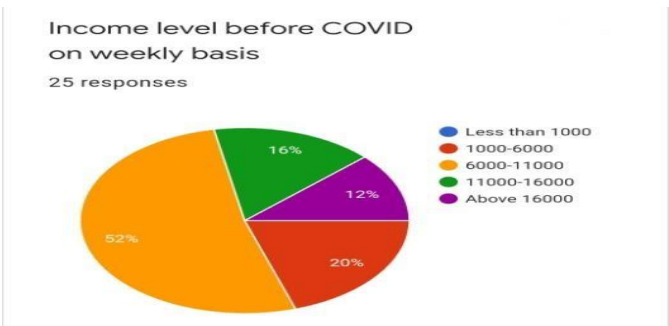

In the view of the income level we saw that the weekly income level of our participants before COVID-19 lies in the range of 6000-11000 and this is the majority count. Around 20% of our participant have range of 1000-6000, 16% of our participant falls in the range of 11000-16000 and 12% of them falls in the range of above 16000.

We observed the major drop down in their weekly income level during

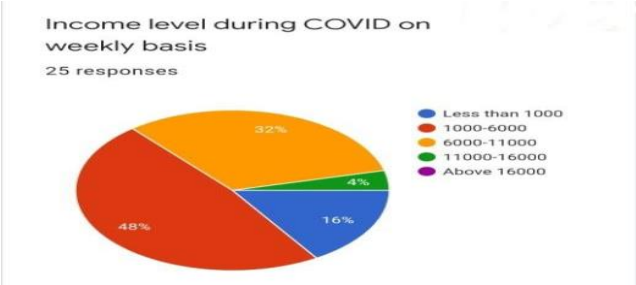

COVID-19 of our participants. Their income level lies in the range of 1000-6000 and this is the majoritycount. Around 32% of our participant have range of 6000-11000, to our surprise 16% of our participants falls in the range of less than 1000 and 4% of them earning in range of 11000-16000

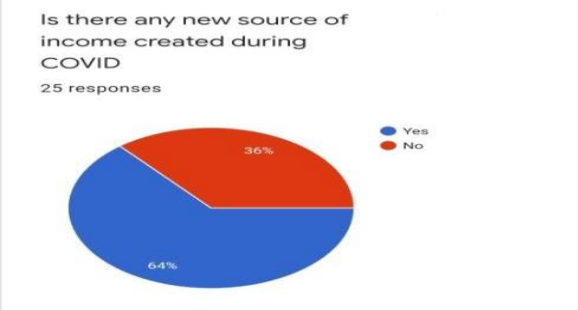

64% of the participants told that they created a new source of income to run their daily life and to sustain their livelihood.

New source of income created by food hawkers or by their family members to sustaintheir livelihood according to our survey are as follows:

- Working as a salesman
- Stitching business
- Started Pani Puri Stall
- Opened Pan shop
- Family members started working as maid
- Tution classes
- Fruit juice stall
- Vegetable vendor
- Peon in private school
- Tiffin services for Hostel
- Making incense sticks at small scale

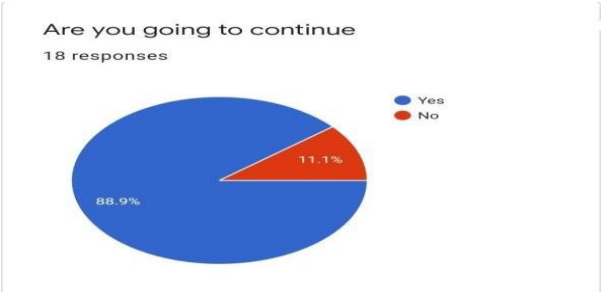

88.9% of them stated that they are going to continue with the new source of income fortheir family as it gives finance

Findings

The survey was conducted among the participants of MAHARA PRATAP NAGAR of BHOPAL. Among those participants, 44% were from age group 18-28 years, 28% were fromage group 39-48 years, 20% were from age group 29-38 and 8% were from age group 49 & above at the time of survey.

Also, among those participants, 60% were married and 40% were unmarried.

- According to our survey we found that 44% of our participant had changed their business After COVID and 56% out of them had decided to continue their previous business.
- We got to know that 76 % of total participants received some help from different sources.
- During our survey we found that 50% of our participant got some help from government in terms of money and ration.
- 25% of them got support from their family.
- 20% of the people get support from their friends.
- 5% of them got support from the local NGO's.
- Majority of our participant got support in terms of money (65%), few participant received help

in terms of food/ ration from government (30), only 5% of our total participants get help in terms if shelter

- Food hawkers who use to live in rented house so out of them 92.3% of them were able to pay the rent amount and the rest 7.7% were not able to pay the room rent due to low income during COVID-19.
- In our survey we observed that 64% of our participant have rented shop and remaining participantowned the shop that is 36%. Food hawkers who use to have rented shops were able to pay the rent.

- According to our survey we found that 52% of our participant were having debts from their family, friend and some other sources due to low income level during COVID-19. Out of 52% of our participant only 41.7% of them were able to pay the installments from their monthly income and the majority of them were unable to pay the installments (58.3%)
- During our survey we got to know that the family members working for livelihood in each family increased due to low income and increased rate of commodities.
- In the view of the income level we saw that the weekly income level of our participants before COVID-19 lies in the range of 6000-11000 and this is the majority count. Around 20% of our participant have range of 1000-6000, 16% of our participant's falls in the range of 11000-16000 and12% of them falls in the range of above 16000.
- We observed the major drop down in their weekly income level during COVID-19 of our participants. Their income level lies in the range of 1000-6000 and this is the majority count. Around 32% of our participant have range of 6000-11000, to our surprise 16% of our participant's falls in the range of less than 1000 and 4% of them earning in range of 11000-16000.

Some Other Challenges Faced By Street Food Vendors

Compelled to sell their goods, ***Working hours and earnings of essential perishable goods (fruits and vegetables) vendors:*** After the announcement of the lockdown, fruits and vegetable vendors were given limited time to sell their goods. Also, other daily wage earners had been impelled to turn into vegetable vendors. This resulted in a greater number of suppliers with declined demand from the customers. Fruits and vegetable vendors also faced difficulties since, as per the government orders, they had to roam and sell their goods rather than being stationary. Vendors mentioned that in their traditional stationary kind of shop customers were familiar but during the lockdown, they had to go around the colonies to find new customers. It was naturally time-consuming and due to high competition vendors were cheap, leading to losses.

Customers Preferred buying from vendors who were reaching their doorsteps. As a result, many regular customers of these vendors had reduced. The majority expressed that their daily income had reduced to less than half. *Working hours and earnings of non-essential perishable goods (food) vendors:* The majority of the food vendors could do nothing during the lockdown period. With the loss of income, they faced financial difficulties which forced them to consider starting other businesses. It was easy to sell only vegetables and fruits at that time, so few food vendors started selling vegetables and fruits; others started their food vending activity through home and parcel service.

A 40-year male food vendor with 2 years of experience stated that "*After one month of lockdown, I started sellingvegetables, as only this was allowed. Opening a grocery store would have required more investment which wasout of the question for me.*"

Loans: During the lockdown, approximately half of the participants had to take a loan to cover their daily expenses. Months of continuous lockdown has brought their businesses to a standstill leaving no option to repaythe loan.

A 40 years male food vendor Mr. Nirpat Singh with 2 years of experience stated that "Lockdown has a huge effect on how we manage our home, no income; we have credits and loans to pay back. We have taken a loan from a self-help group. I was managing to pay back its installments through my business, but now as everything is closed and no income, we are not able to pay its installments.*"*

Precautions against COVID-19 pandemic*:* Vendors who could somehow work amidst lockdown have reported usage of sanitizers and masks as a precautionary measure against COVID-19. They also followed the rule of physical distancing. The majority mentioned that they were not able to wash their hands regularly at the workplace due to the absence of a water facility. About half of the vendors who lost their daily bread and butter, felt worried and reported that it might be the biggest health crisis for the entire world but it is a huge financial crisis for them.

Home environment: Most of the vendors mentioned that the home environment has changed drastically. They hadto reduce their household expenditure to less than half. Over half of the vendors said that their income had stoppedduring the lockdown so they did not have money to buy rations for home as there is no income. A neighbour offered to help me with wheat, and a friend gave me some money. This is how I am running my house," 48-year female food vendors Ms. Shyama with 7 years of experience stated. Those who could not work have mentioned they had to suffer severe mental stress during this Period. A 35-year male street vendor with 18 years of experience explained that "It is lockdown but homes are not closed. Income has been shut down but expenses continue."

Health issue*:* During the study, it was found that some of the vendors' household members suffered from diseases like diabetes and hypertension, so the cost of treatment became unaffordable. Few expressed their fear of inefficiency in getting any treatment if any family member falls sick. They can hardly afford it.

Experience of migrated workers on their journey to their homes*:* The majority of the migrant vendors (3/5) said that when they reached their village, they were sent to a nearby government hospital for examination. Some migrants received masks, train tickets, biscuits, water bottles free of cost for their journey. They migrated to Madhya Pradesh to earn their living and stayed most of the years there. As a result, their family members' nameshad been removed from their ration card. In another case, the family of a vendor was renting a house in Bhopal and was unable to pay rent during lockdown which compelled them to return to their village. In the absence of public transport, his relatives had to spend a fortune to rent a private car to return to their home village

Conclusion :-

- Different challenges were faced by food hawkers during COVID-19.
- There were few food hawkers who had dept. on them and were not able to pay the installmentdue to low income level during COVID-19.
- In our survey we saw that there were few food hawkers who tried to generate new incomeSource to sustain their livelihood.
- We also observed that there were few food hawkers who can't even think to start new businessas they already have loans from their friends or neighbours.
- Food hawkers were supported by government through different schemes like
- Few food hawkers were deprived from such schemes which was started by government tosupport their livelihood.
- During this COVID-19 there were so many business ideas which is going to continue by themin future. Through Pradhan Mantri Mudra Yojana street food hawkers received loan of 10000 asgovernment released 20 lakh crore to help them

Reference:-

1. Dr.ShilpSharma https://www.researchgate.net/publication/357993496, ANALYSIS OF IMPACT OF THE COVID-19PANDEMIC ON STREET VENDOR
2. https://imgmediagumlet.lbb.in/media/2019/04/5cbc5ded512c0c3e8b6c782d
3. https://m.timesofindia.com/city/bhopal/bhopal-streetside-business-emerges-in-new-avatar-in-covid-altered-world/article show/78356311.cms
4. https://m.economictimes.com/news/india/skill-india-launches-programme-to-upskill-street-food-vendors/article show/88016749.cms
5. http://shrutkeertithakur.com/wp-content/uploads/2020/02/20200216_012932.jpghttps://tr.m.wikipedia.org/wiki/Dosya:Bhopal_in_India.png
6. https://www.britannica.com/place/Bhopal-India
7. https://www.hindustantimes.com/delhi-news/street-food-vendors-to-be-trained-in-hygiene-social-distancing/story-v1W5XZfuzFLSHKXAFxJyCP_amp.html
8. https://www.holidify.com/images/compressed/flexPage_78.jpg
9. https://www.karthfoodfactory.com/best-food-places-in-bhopal/
10. https://www.karthfoodfactory.com/wp-content/uploads/2021/05/imgpsh_fullsize_anim- 13-2.jpg
11. https://www.reuters.com/journalists/michael-taylor
12. Nitya Maniktalaand Tanisha Jain (https://ijpsl.in › 2021/01,PDF State of Street Vendors in India: Pre and Post COVID-19 Analysis | IJPSL)

A Case Study on the Factor Affecting the Work Stress Level Among the Food and Beverages Female Staff of Double Tree by Hilton Ahmedabad

Satish Singh*

Isha Panchal**

Rohit Thorat***

Abstract: Employee stress is a significant issue in the hospitality industry, and it is costly for employers and employees alike. Although addressing and reducing stress is both a noble goal and is capable of resulting in expense reductions for employers, the nature and quantity of hospitality employee stress is not fully understood. This survey was specifically done on female food and beverage staff of double tree by Hilton Ahmedabad hotel. The first aim of this study was to identify the factor which were responsible for stress in hotel for the working female employee. The second aim was to know how the stress on employee can affect the productivity of hotel and how it can make a change in employee's behavior. As the human resource department is made specifically for the employee following that are third aim was to know what all activity or steps are taken by human resource team to reduce the stress level of employee on work. More employee and coworker stressors were linked to more negative physical health symptoms. Also, interpersonal tensions at work were linked to lower job satisfaction and greater turnover intentions.

Keywords: Perception, Factors, Hotel, Stress, Food and Beverage, Female Staff.

Introduction :- Stress management is a wide spectrum of techniques and psychotherapies aimed at controlling a person's level of stress, especially chronic stress, usually for the purpose of and for the motive of improving everyday functioning. Stress produces numerous physical and mental symptoms which vary according to each individual's situational factors. These can include a decline in physical health as well as depression. The process of stress management is named as one of the keys to a happy and successful life in modern society. Life often delivers numerous demands that can be difficult to handle, but stress management provides a number of ways to manage anxiety and maintain overall well-being.

Despite stress often being thought of as a subjective experience, levels of stress are readily measurable; using various physiological tests, similar to those used in pholygraphs.

There are several models of stress management, each with distinctive explanations of mechanisms for controlling stress. Much more research is necessary to provide a better understanding of which mechanisms actually operate and are effective in practice.

Literature review: Research has shown a negative correlation between job stress and quality customer service delivery, that is, less stressed employees provide better customer service than more stressed ones (Varca, 1999), and customer service employees reporting chronic stress exhibit particularly poor job performance (Beehr, Jex, Stacy, & Murray, 2000). In general, work-related stress has been shown to result in declines in the quality of employee job performance (Gilboa,

*** Lecturer, IHM Ahmedabad.**

**** B.sc student, IHM Ahmedabad.**

*****B.Sc Student, IHM Ahmedabad.**

Shirom, Fried, & Cooper, 2008; Lepine, Podakoff, & Lepine, 2005), increases in exhaustion, decreases in employee ability to learn (Lepine, Lepine, & Jackson, 2004), more depressive symptoms, hostility (Motowidlo, Packard, & Manning, 1986), and withdrawal (Gupta & Beehr, 1979). However, there is very limited literature of this type in the hospitality industry, and a lack of understanding regarding the nature, quantity and outcomes of stress among hospitality industry employees.

Within the hospitality industry, work stress has been regarded as one of the most important issues facing mangers because, among other things, it affects the performance of all levels of employees, including both managers and hourly employees (Ross, 1995). Recent research has found that employee stress in the hospitality industry is important because it can result in workers becoming exhausted and cynical (Kim, 2008) which can have negative effects on service delivery. Stress within the hospitality industry has been qualitatively and moderately correlated with employee physiological symptoms, including headaches, fatigue, indigestion, ulcers, blood pressure, heart attacks, and strokes (Krone, Tabacchi, & Farber, 1989), and thus may result in decreased productivity and increased health care costs for the hospitality employer

Significance of study :- As from study world got to know that the hospitality is affected so badly. Even after covid 19 the industry is not able to grow in which what we found the main reason was employees satisfaction, It is the bitter truth of the the industry that if the employee is not happy he/she will not able to give his/her 100% and the main reason of not giving 100% is stress. Stress makes a person physically as well as mentally weak. As being from the same background did training and got to know that really people are in stress and this affects the growth of the industry at extreme level. Our motive of doing the study was to know that really the person there affect with the stress at work.

Objectives of the study :-

1. To study the different factor responsible for work related stress among female staff.

2. To know the impact of this factor related with work stress level on the employee behavior and productivity.

3. To know different activities adopted by double tree by Hilton Ahmedabad to reduce the work related stress level.

Methodology:- This research is heavily on primary data. The information was gathered from female staff of double tree by Hilton Ahmedabad. Data is collected through Online Survey; sending questionnaire to the prospective respondents over an email, social media platforms. The questionnaire is prepared on online survey platform. The data is analysed though pie chart method tabular method. This choice of methodology is classic in attainment of the desired outcome. The questions formed are closed ended and are appealing the respondents to answer as per their experience. Secondary references such as reports, thesis, and books were also used to comments on previous studies on Stress Management.

Sample size:- To meet the stated objective, data was collected from 25 employee, the opinion and views of those who participated in the survey was collected and accumulated in various charts. The data collected from this survey is presented, studied and analyzed for this research project.

Survey Analysis:- This research paper has doubtlessly brought some worthwhile findings to highlight the perception towards stress among female staff of food and beverage. 7 of them have given their valuable opinions. The findings are furnished below:

1.Designation of the employee filled form ?

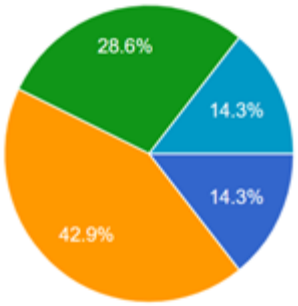

(Figure 1)

In response to designation of the employee there were 42.9% Hostess, 28.6% supervisor 14.3% manager and 14.3% steward.

2 Year of services of the employee filled form?

In response to year for year of service there were 100% who are working in the hotel for the 1-5 years.

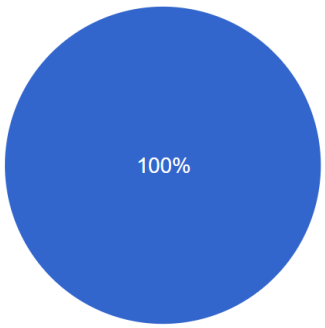

(Figure 2)

3 Do you have stress at work place ?

In response stress at work place 57.1% participants responded Yes as they have stress at their work place on the other hand 42.9% participants responded NO as they didn't have any stress at work place.

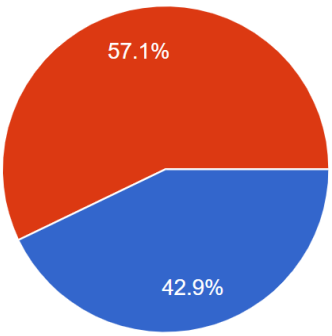

(Figure 3)

Factors are responsible for the stress level at the work

Factor responsible is long working hours shift **?**

In response for the long hour shift were among 7 participant, 4 (57.1%) participants are agreed with it were 2 (28.6%) participants strongly agreed and 1 (14.3%) participant were neutral

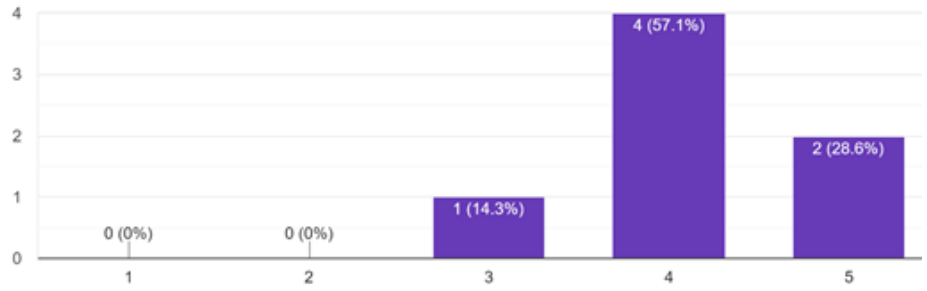

(Figure 3.1)

Factor responsible is work pressure?

In response for the work pressure were among 7 participant 1(14.3.%) strongly disagree, 2(28.6%) disagree, 2(28.6%) agree, 2(28.6%) strongly agree.

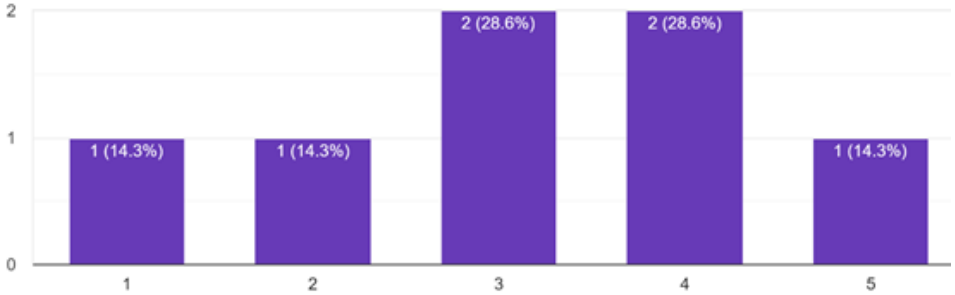

(Figure 3.2)

Factor responsible is night shift?

In response where out of 7 participant, 3(42.9%) strongly disagree, 1(14.3%) disagree, 1(14.3%) neutral, 1(14.3%) agree, 1(14.3%) disagree.

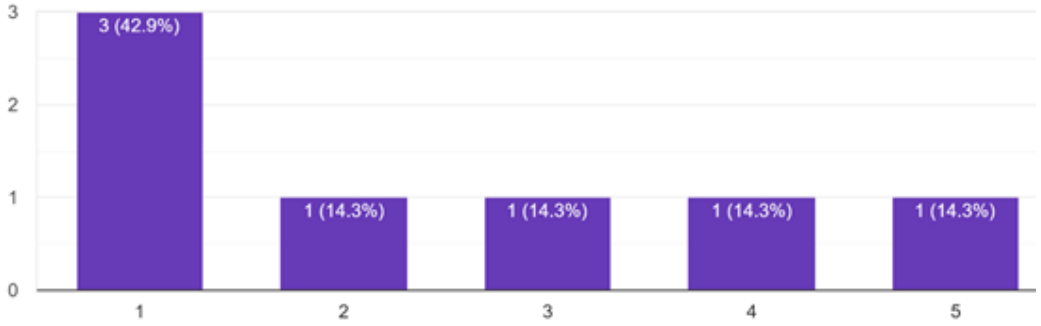

(Figure 3.3)

Factor responsible is Discrimination?

In response where out of 7 participant, 2(28.6%) agree, 2(28.6%) strongly agree, 1(14.3%) neutral, 1(14.3%) strongly disagree, 1(14.3%) disagree.

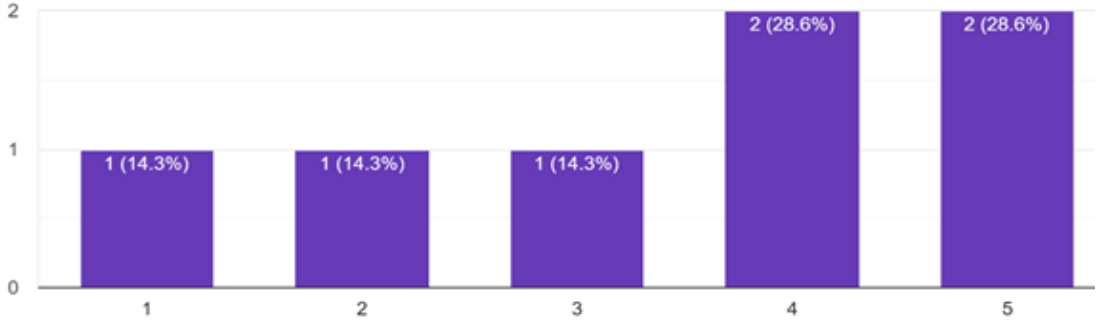

(Figure 3.4)

Factor responsible is Peak Days?

In response where out of 7 participant, 3(42.9%) neutral, 2(28.6%) agree, 2(28.6%) neutral.

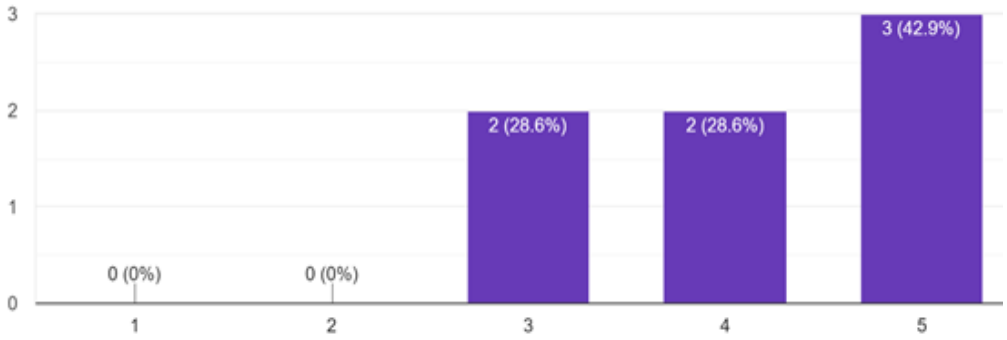

(Figure 3.5)

Factor mention here are responsible is Auditing?

In response where out of 7 participant, 2(28.6%) strongly disagree, 2(28.6%) neutral, 1(14.3%) strongly agree, 1(14.3%) agree, 1(14.3%) disagree.

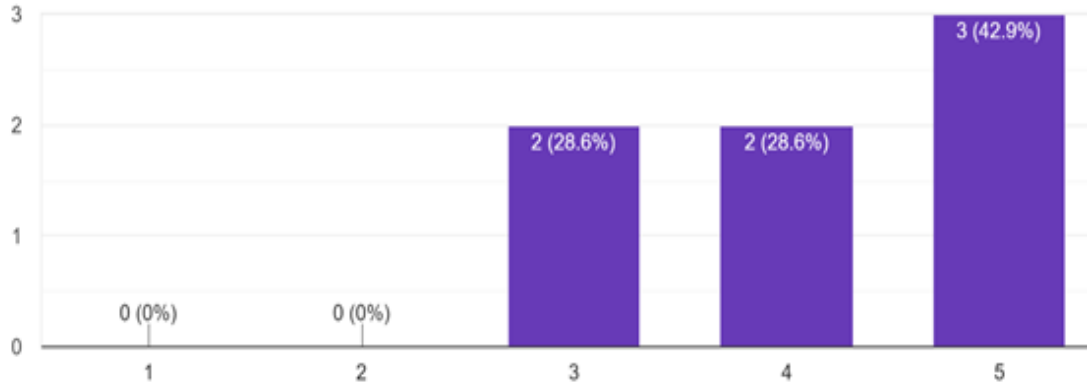

(Figure 3.5)

Effect of stress at work

In response of "Effect Of Stress At Work" 57,1% participants responded NO as the have stress at their work place on the other hand 42.9% participants responded YES as the didn't have any stress at their work place.

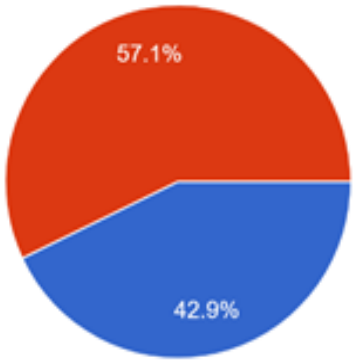

(Figure 4)

What effect of stress at work regarding depression?

In response where there, among 7 participant, 3(42.9%) strongly agreed, 2 (28.6%) participants neutral and 1 (28.6%) participant were strongly disagree.

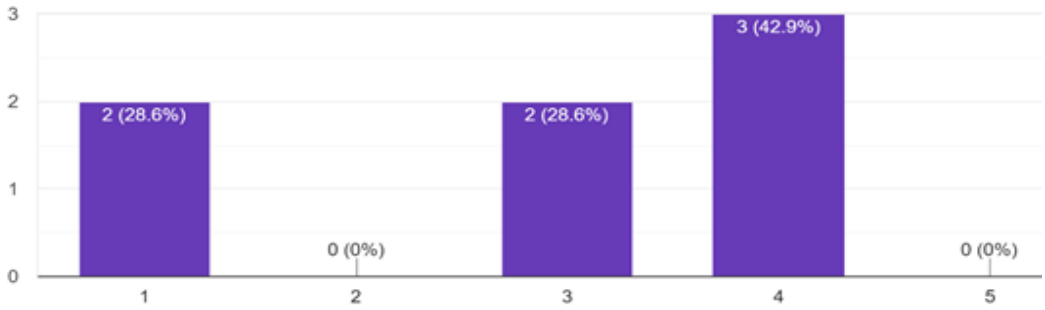

(Figure 4.1)

Effect of anxiety

In response where out of 7 participant , 4(42.9%) agree, 2(28.6%) strongly disagree, 1(14.3%) disagree, 1(14.3%) neutral.

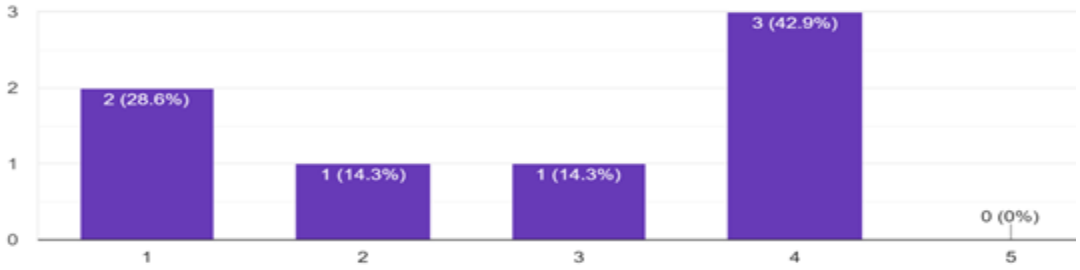

(Figure 4.2)

Effect of loose interest in work

In response where out of 7 participant , 4(57.1%) strongly agree, 1(14.3%) agree, 1(14.3%) disagree, 1(14.3%) strongly disagree.

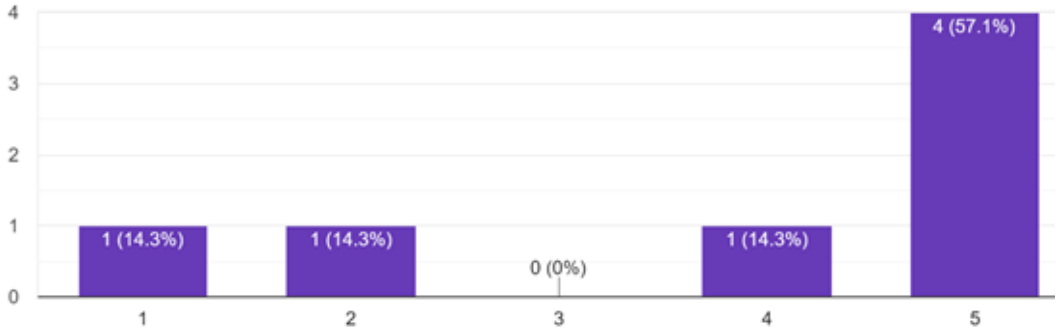

(Figure 4.3)

Effect of irritable behavior

In response where out of 7, 3(42.9%) is agree, 2(28.6%) is strongly agree, 1(14.3%) strongly disagree, 1(14.3%) neutral.

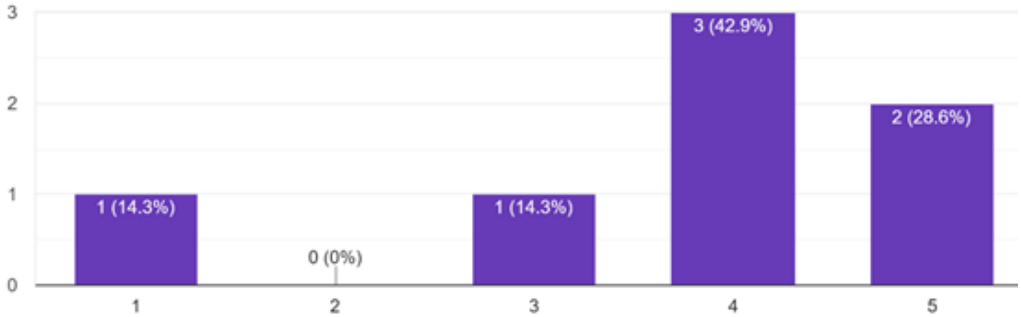

(Figure 4.4)

Effect of overactive

In response where out of 7, 2(28.6%) strongly disagree, 2(28.6%)
Agree, 2(28.6%) strongly agree, 1(14.3) disagree.

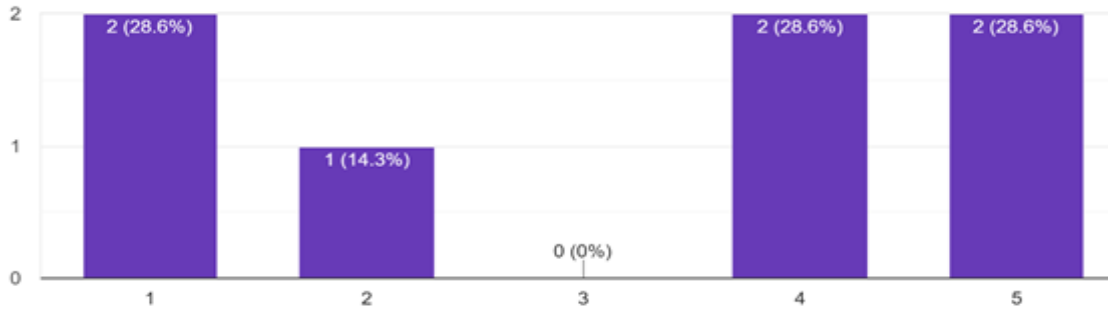

(Figure 4.5)

Effect of sleeping difficulties

In response where out of 7, 2(28.6%) strongly disagree, 2(28.6%) agree, 1(14.3%) disagree, 1(14.3%) neutral, 1(14.3%) strongly agree.

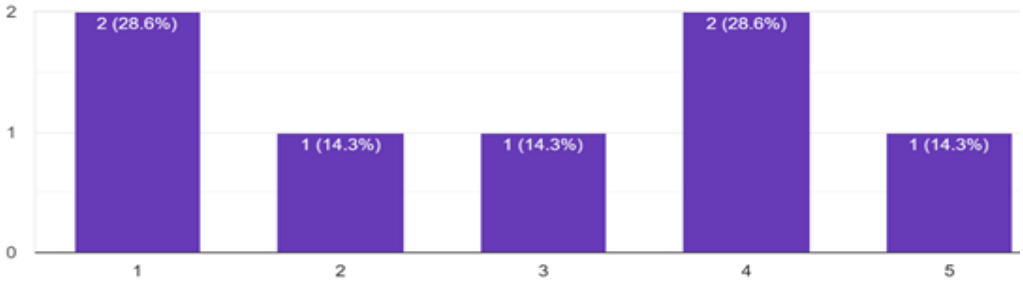

(Figure 4.6)

Effect of fatigue

In response where out of 7, 4(57.1%) agree, 2(28.6%) strongly disagree, 1(14.3%) disagree.

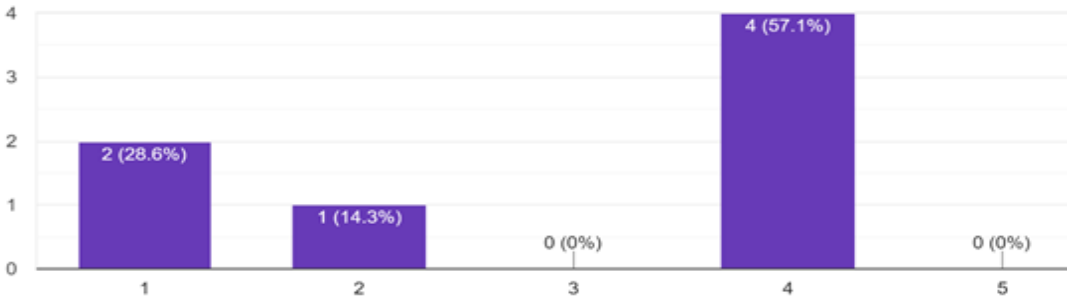

Activities conducted by human resource to reduce stress level.

Now the first activite is arranging game where out of 7, 3(42.9%) strongly agree, 2(28.6%) agree, 1(14.3%) neutral, 1(14.3%) disagree.

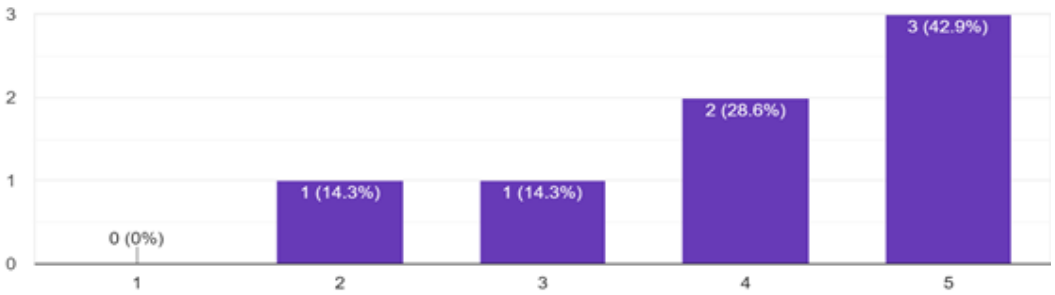

(Figure 5)

Now the next activite is team outing where out of 7, 2(28.6%) strongly disagree, 2(28.6%) neutral, 2(28.6%) is agree,1(14.3%) strongly agree.

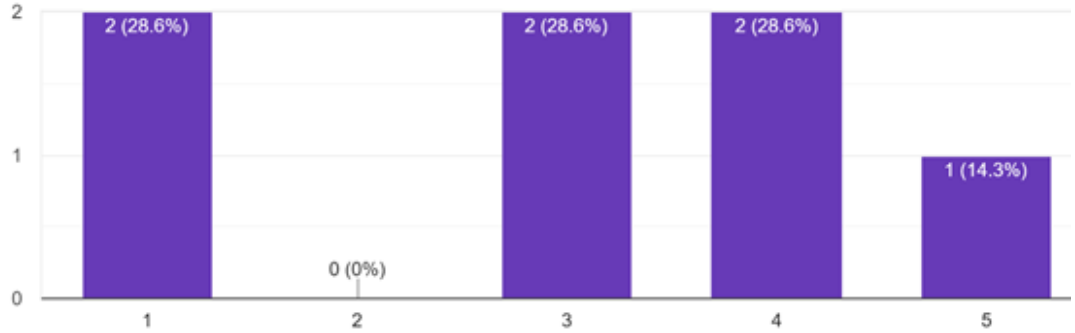

(Figure 6)

Now the next activite is arranging different type of food and beverages where out 7, 5(71.4%) agree, 1(14.3%) neutral, 1(14.3%) strongly agree.

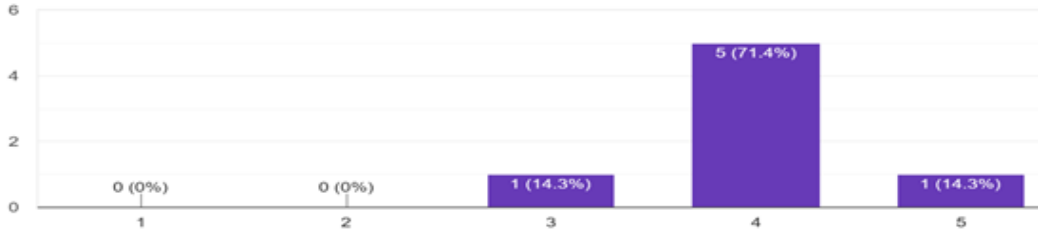

(Figure 7)

Now the next activite is celebrating different event where out of 7, 4(57.1%) strongly agree, 2(28.6%) agree, 1(14.3%) neutral.

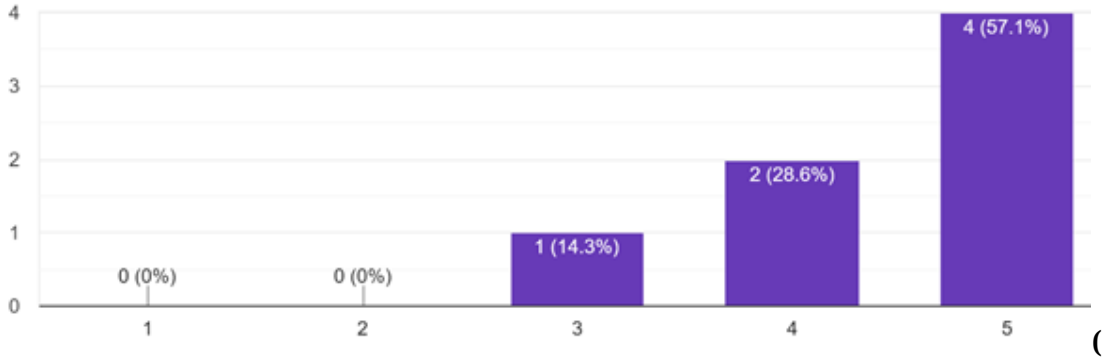

(

Figure 8)

Now the next activite is yoga where out of 7, 3(42.9%) strongly agree, 2(28.6%) strongly disagree, 1(14.3%) agree, 1(14.3%) diagree.

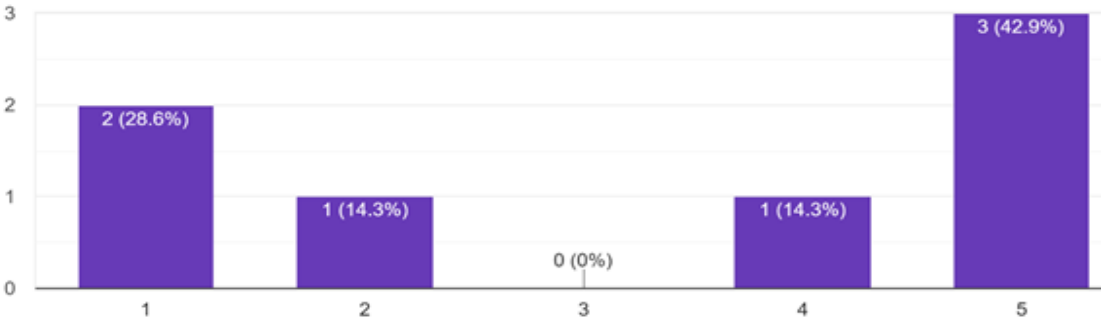

(Figure 9)

Now the next and last activite mention here is appreciation letter distribution where out of 7, 3(42.9%) strongly agree, 2(28.6%) agree, 2(28.6%) neutral.

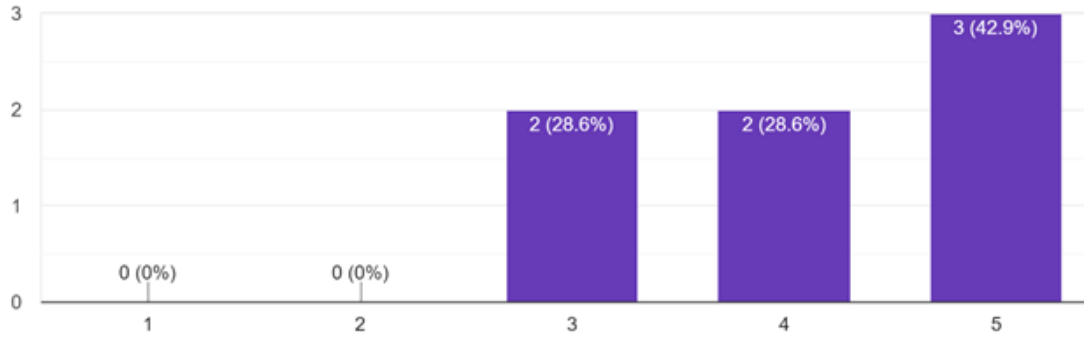

(Figure 10)

Findings:

- In our survey 100% were female.
- The survey was conducted among female staff of DOUBLE TREE BY HILTON.
- Among those participant 100% were form age group of 18-30
- Also, among those participant 100% were unmarried
- On the basis of education qualification, 57.1% were graduate and 42.9% were under graduate.
- In department 57.1% work in WAVE (multi cuisine restaurant), 28.6% work in HOP (coffee shop), 14.3% work in in room dinning.
- 42.9% participant are designated for hostess, 28.6% are designated for supervisor, 14.3% are designated for manager, 14.3% are designated for steward.
- Year of service are 1-5 year for 100% participant.
- 57.1% female staff at double tree by Hilton have NO stress where as 42.9% says YES.
- Factor responsible for stress level of work show that:
  - Long hour shift indicates 4 participants agreed, 2 participants strongly agree and 1 participant neutral.
  - Work pressure at work indicates 2 participants agreed, 2 participants neutral, 1 disagree, 1 strongly disagree and 1 strongly agree.
  - Handling physical work indicates 2 disagree, 2 agree, 2 strongly agree and 1 strongly disagree.
  - Night shift during work indicates 3 strongly disagree, 1 disagree, 1 neutral, 1 agree and 1 strongly agree.
  - Discrimination at work indicate 2 strongly agree, 2 agree, 1 neutral, 1 disagree, 1 strongly disagree.
  - Peak day indicates that 3 are strongly agree, 2 are agree and 2 are neutral
  - Auditing at work indicates that 2 are strongly disagree, 2 are neutral, 1 strongly agree, 1 agree and 1 disagree.
- 57.1% participants do not combat stress at personal level where 42.9% participants combat stress at personal level.
- Effect of stress at work:
  - Depression indicates 3 are agree, 2 neutral and 2 strongly disagree.
  - Anxiety indicates 3 are agree, 2 strongly disagree, 1 disagree and 1 neutral.

- Loose interest in work indicates 4 strongly agree, 1 strongly disagree, 1 disagree and 1 agree.
- Irritable behavior indicates 3 are agree, 2 strongly agree, 1 strongly disagree and 1 neutral.
- Overactive indicates 2 strongly agree, 2 agree, 2 strongly disagree and 1 disagree
- Sleeping difficulties indicates 2 are agree, 2 strongly disagree, 1 agree, 1 neutral and 1 disagree.
- Fatigue indicates 4 are agree, 2 strongly disagree and 1disagree.

- Activities conducted by HR to reduce stress level, here is the list of mention activity in survey:
  - Arranging games indicates 3 are strongly agree, 2 agree 1 neutral and 1 disagree.
  - Team outing indicates 2 are agree, 2 are neutral, 2 are strongly disagree and 1 strongly agree.
  - Arranging different types of food and beverages indicate that 5 are agree, 1 is strongly agree and 1 is neutral.
  - Celebrating different events indicates that 4 are strongly agree, 2 are agree and 1 is neutral
  - Yoga activity indicates that 3 are strongly agreed, 2 are strongly disagree, 1 is agree and 1 is disagree
  - Appreciation letter distribution indicate that 3 are strongly agreed, 2 are agreed and 2 are neutral

Suggestion: - There were no suggestion to reduce stress level by the participant.

Conclusion:

- Female staff are under the age of 18-30, still need to experience a lot in hotel industry.
- Less than 50% of the staff is graduate that means still half of them are on training level.
- All of them are serving industry under 5 years
- 42.9% of them have stress at work.
- The mention factor which are responsible for stress level at work are agreed by 70% and disagreed by 30%
- 42.9% have combat stress at personal rest all do not have
- The factor mention on effect of stress at work were less than 50% agreed to that factor.
- The activities conducted by HR are agreed by 80% which reduces the stress.
- Here we can say that less than 50% female staff at double tree by Hilton have stress at work

References:

1. https://www.hilton.com/en/hotels/amddidi-doubletree-ahmedabad
2. https://medlineplus.gov/ency/article/003211.htm
3. https://www.ncbi.nlm.nih.gov/pmc/articles/PMC3686125/
4. https://wikipedia.org/wiki/Stress_management
5. John O'Neill, KellyDavis[b1] ,Work stress and well-being in the hotel industry, International Journal of Hospitality Management,2010
6. Kim, Soon-Lae , Rhie, In-Sook, The Effects of a Stress Management Program on Job Stress in a Hotel Culinary Staff, 2008

पत्रिका में शोध-लेख प्रकाशन की अनिवार्य शर्तें

1. आपके द्वारा प्रेषित शोध–लेख मौलिक, स्तरीय, प्रकाशन के योग्य एवं अप्रकाशित हो, तथा आपके द्वारा **आलोचन दृष्टि** द्वारा जारी किया गया **लेखक का घोषणा–पत्र** फार्म अवश्य भरा होना चाहिए।
2. अपने शोध–लेख (हिन्दी व संस्कृत के Kruti Dev 10 में और अंग्रेजी के Times New Roman Font में) की वर्ड एवं पी.डी.एफ. फाइल बनाकर सी.डी. या डी.वी.डी. में हार्ड कॉपी के साथ **आलोचन दृष्टि, कार्यालय** के पते में प्रेषित करें। आपको यदि अपने शोध–लेख का **स्वीकृत पत्र** चाहिए तो एक लिफाफे में अपना नाम, पता पिन कोड सहित लिखकर, आवश्यक स्पीड पोस्ट की डाक टिकट लगाकर भेजें और 3–4 महीने तक अनावश्यक कोई कॉल किसी भी **आलोचन दृष्टि** के प्राधिकारी से न करें। यदि किसी पदाधिकारी से बात करने की जरूरत पड़े तो शाम 6.00–8.00 के बीच संपर्क करें।
3. **शोध–लेख/आलेख में मोबाइल नंबर, ई–मेल एवं पता अंकित होना चाहिए।**
4. शोध–लेख/आलेख की जांच **संपादक मंडल** एवं **आलोचन–दृष्टि–परिवार** के द्वारा की जाएगी उसके उपरांत ही शोध–लेखों/आलेखों को प्रकाशित किया जायेगा, जिसमें **संपादक मंडल** का **निर्णय** अंतिम और सर्वमान्य रहेगा।
5. शोध लेख **यूजीसी** के मानक के अनुरूप होने चाहिए और **संदर्भ–सूची** में पुस्तक का नाम, लेखक का नाम, प्रकाशन का नाम, संस्करण–वर्ष एवं पृष्ठ संख्या तथा पत्रिका के संदर्भ हेतु, उसका अंक, वर्ष, पृष्ठ संख्या आदि– निश्चित रूप से अंकित होने चाहिए। ऐसा न होने पर लेख की **संदर्भ–सूची** को भ्रामक माना जाएगा।
6. पत्रिका के प्रकाशन हेतु लेखकों, पाठकों एवं आलोचकों से सदस्यता भी अपेक्षित रह सकती है, क्योंकि पत्रिका को कोई अनुदान या अंशदान नहीं प्राप्त हो रहा।
7. पत्रिका में सर्वेक्षणात्मक की अपेक्षा वैचारिक शोध–लेखों/आलेखों को वरीयता प्रदान की जायेगी।

Essential conditions for publication of research articles in the journal

1. The research article sent by you should be original, quality, worthy of publication and unpublished, and the **Author's Declaration Form** issued by **Aalochan Drishti** must be filled.
2. To send CD or DVD of your research articles Word & PDF File, with hard copy (Hindi & Sanskrit in **Kruti Dev 10 Font** and English in **Times New Roman Font**) at the address of **Aalochan Drishti**. If you want the Acceptation Letter of your dissertation/article, then write your name, address with pin code in an envelope, to affixing required speed post postage stamp and No unnecessary call for 3-4 months from any officer/ Member of Aalochan Drshiti. If there is a need to talk to any Officer/Member, then contact between 6.00-8.00 in the evening.
3. Mobile number, e-mail and address should be mentioned in the research paper/article.
4. The research-articles will be examined by the **Editorial Board** and **Aalochan Drishti - Family**, only after that the research articles/articles will be published, in which the decision of the **Editorial Board** will be final and binding.
5. Research articles should be as per **UGC standard** and in the **Bibliography** the name of the book, the name of the author, the name of the publication, the edition-year and page number and for the reference of the journal, its issue, year, page number etc.- fixed must be clearly marked. Otherwise, the **Bibliography** of the article will be considered misleading.
6. Subscription may also be required from writers, readers and critics for the publication of the magazine, because the magazine is not receiving any grant or contribution.
7. Preference will be given to conceptual research articles/articles in the journal rather than survey.

आलोचन दृष्टि
आजाद नगर, बिन्दकी, जनपद–फतेहपुर,
उ0प्र0–212635
ई–मेल : aalochan.p@gmail.com